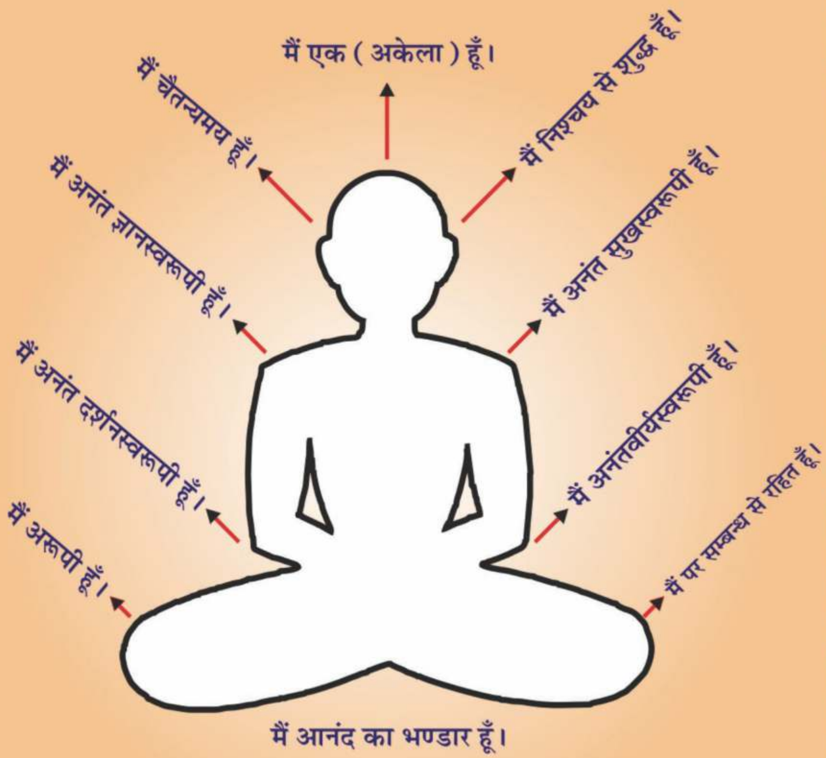

तत्त्वधारणा

सम्यक् ध्यान शतक

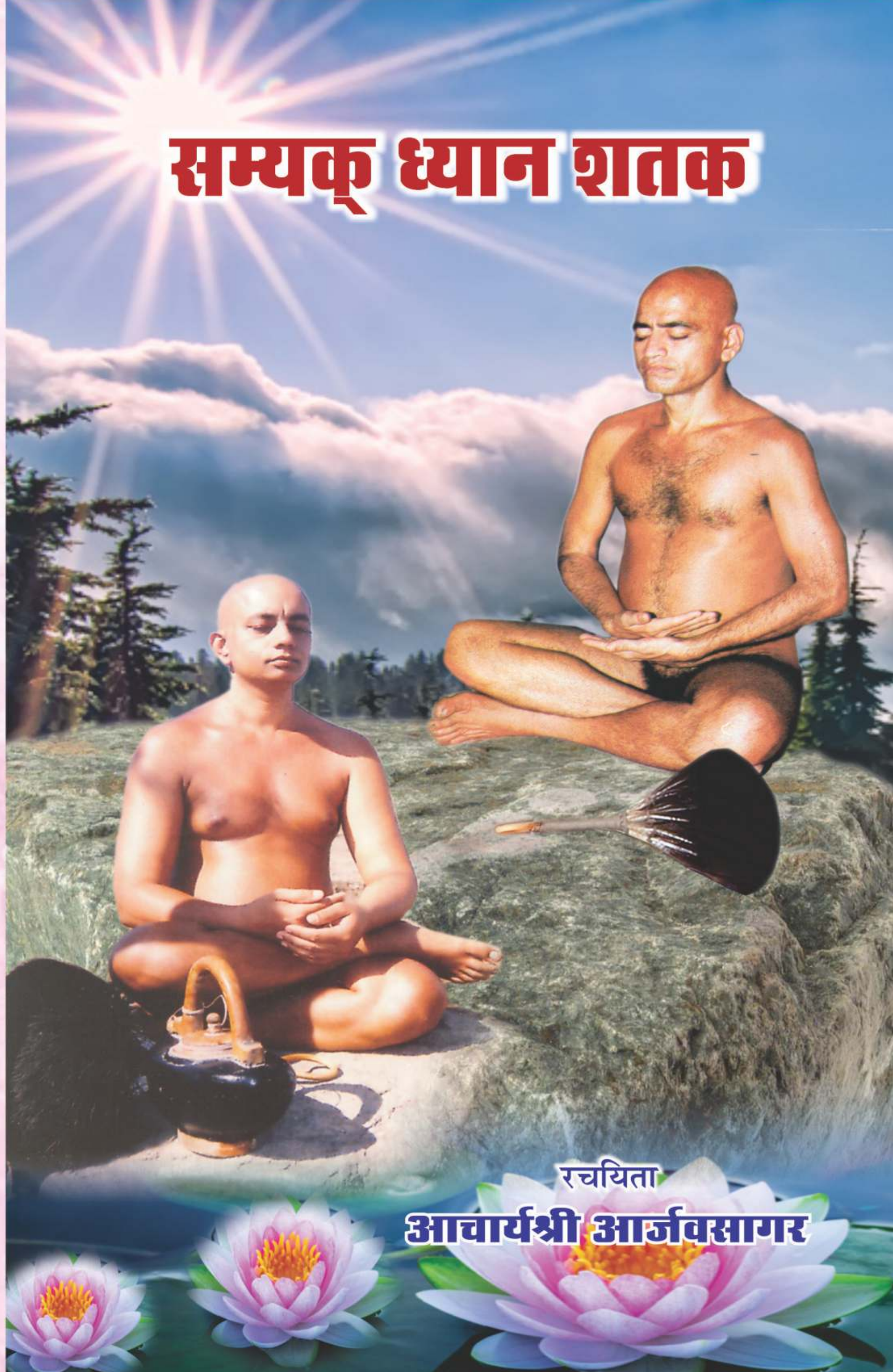

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर

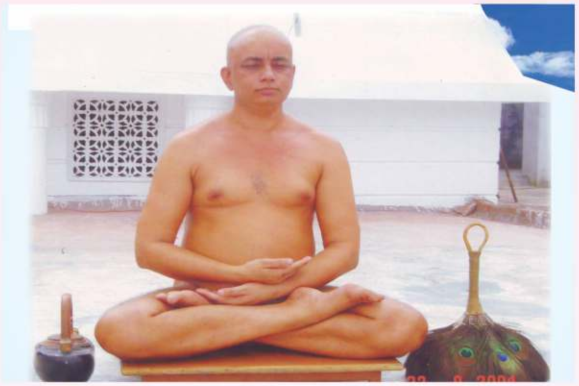

आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- ११.९.१९६७, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- १९.१२.१९८४, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	- १९८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	- ८.११.८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
ऐलक दीक्षा	- १०.७.१९८७, अतिशय क्षेत्र, थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- ३१.३.१९८८, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, महावीर जयन्ती सन् १९८८
दीक्षा गुरु	- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्यपद	- २५.०१.२०१५ (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	- धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जिनवर-स्तुति, साम्य-भावना, आगम-अनुयोग, जैन शासन का हृदय, लोक कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य।
पद्यानुवाद	- गोमटेशथुदि, जिनागम-संग्रह (वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, द्रव्य-संग्रह), तत्त्वसार एवं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका।

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादाएँ

क्र.	पदार्थ	शीत ऋतु अगहन से फाल्गुन	ग्रीष्म ऋतु चैत्र से आषाढ़	वर्षा ऋतु श्रावण से कार्तिक
1.	शक्कर का बूरा	1 माह	15 दिन	7 दिन
2.	दूध (दूहने के पश्चात्) दूध (उबालने के पश्चात्)	2 घड़ी 8 पहर	2 घड़ी 8 पहर	2 घड़ी 8 पहर
3.	दही (गर्म दूध का)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
4.	छाछ (बिलोते समय गरम पानी डालें) छाछ (पीछे गरम पानी डालें तो)	4 पहर 2 घड़ी	4 पहर 2 घड़ी	4 पहर 2 घड़ी
5.	आटा (सर्व प्रकार)	7 दिन	5 दिन	3 दिन
6.	मसाले पिसे हुए	7 दिन	5 दिन	3 दिन
7.	नमक पिसा हुआ नमक मसाला मिला दें तो	2 घड़ी 6 घंटे	2 घड़ी 6 घंटे	2 घड़ी 6 घंटे
8.	खिचड़ी,रायता, कढ़ी, तरकारी, रोटी	2 पहर	2 पहर	2 पहर
9.	पूरी, हलवा, बड़ा आदि	4 पहर	4 पहर	4 पहर
10.	मौन वाले पकवान	8 पहर	8 पहर	8 पहर
11.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	मीठे पदार्थ मिला दही	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
13.	गुड़ मिला दही, छाछ और द्विदल	सर्वथा अभक्ष्य		
14.	घी, तेल एवं गुड़	जब तक स्वाद न बिगड़े		

एक घड़ी-24 मिनट की और 1 पहर-3 घंटे का होता है

साभार - आहार विधि

सम्यक्-ध्यान-शतक

रचयिता

आचार्यश्री १०८ आर्जवसागरजी महाराज

कृति - सम्यक्-ध्यान-शतक

रचनाकार - आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज

पावन स्मृति - श्री 1008 सिद्धचक्र महामण्डल विधान महोत्सव 21-03-2021 से 29-03-2021 तक नेहा नगर, मकरोनिया, सागर (म.प्र.)

पुण्यार्जक - डॉ. अजितकुमार जैन-श्रीमती सुषमा जैन; इंजीनियर हर्ष-नीतिका; इंजीनियर अपराजित (यू.एस.ए.),
एम.आई.जी. 8/4, गीतांजली काम्प्लैक्स, भोपाल
मो.: 7222963457, 9425601161

संस्करण - छठा, 2021

प्रतियाँ - 1000

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान - आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357,
9425601161, 9425601832, 7222963457

प्रकाशन - पारस प्रिन्टर्स, 207/जी-10, साईंबाबा काम्प्लैक्स,
जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल
फोन: 0755-4260034, 9826240876

मूल्य - स्वाध्याय (आद्योपान्त पढ़ने तक एक खाद्य वस्तु का त्याग करें)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ क्र.
दो शब्द	v
मन्तव्य	vi
एक अनुपम कृति	ix
सम्यक्-ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया	xi
मंगलाचरण	1
संसार का लक्षण	
मोक्ष का स्वरूप	
धर्म का आधार दया	2
लक्ष्य और सोपान	
ध्यान साधना व चिन्तवन	
ध्यान की अवस्थायें	6
ध्यान के योग्य सामग्री	
ध्यान के योग्य आसन	8
ध्यान के योग्य आहार	
ध्यान में बाधक तत्व	9
साधक को लाभ/ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन	
ध्यान सुयोग्य विधि व प्रक्रिया	
ध्येय द्रव्य व साधन द्रव्य	11
ध्यान हेतु क्षेत्र	
ध्यान हेतु काल	
ध्यान हेतु भाव	13

समता का लक्षण	
संयम का लक्षण	
सद्भावनाओं के प्रकार	
आर्त्तध्यान के भेद व गुणस्थान	16, 17
रौद्रध्यान के भेद व गुणस्थान	18, 19
धर्मध्यान व प्रकार	20, 21
संस्थान विचय के भेद	22
पदस्थध्यान और महामंत्र	23
पिण्डस्थध्यान	26
पृथ्वीधारणा	27
अग्निधारणा	
वायु और जलधारणा	30
तत्त्वधारणा	
रूपस्थध्यान	
रूपातीतध्यान	31
धर्मध्यान के स्वामी	
शुक्लध्यान	
शुक्लध्यान के स्वामी और मोक्ष	35
अन्तिम मंगल	35
प्रशस्ति	37
ध्यान हेतु भावनाएं	41
सम्यक्-ध्यान-शतक-शब्दकोष	49
साम्यभावना (सामायिक पाठ)	68
ध्यान-दृश्य	78
पदार्थों की मर्यादा-तालिका (चार्ट)	

दो शब्द

'सम्यक् ध्यान शतक' परमपूज्य गुरुदेव आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज की स्वरचित काव्य कृति है। "एक सौ तेरह" दोहों का संकलन यही भाव स्पष्ट करता है कि "एक स्व आत्मा वही तेरा है।" अतः उसी को ध्यान द्वारा परिमार्जित कर परमात्मा बना ले। कवि हृदय, अनुभव सिद्ध आचार्यश्री ने मंगलाचरण में सिद्ध–जिन सम आप स्वरूप पाने के लिए सम्यक् ध्यानी बनने को नमन किया है। तत्पश्चात् भूमिका में कर्म बन्धन की मुक्ति के लिए पर पदार्थ से विरक्तता और ध्यान की समीचीनता बतलाई है। कृति एक आत्म साधक–निर्ग्रन्थ मुनि द्वारा रचित है। अतएव उनके संयम तप–त्याग वैराग्य और ज्ञान–ध्यान का अनुभव व अभ्यास दोहों में, साकार हुआ है। यथा–

मन पूरे जग में फिरे, एक जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान।।

–में अनुभवानीत अभिव्यंजना है। ध्यान की अवस्थाओं में सहयोगी सामग्री क्या हो सकती है?द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की समीचीनता पर प्रकाश डाला है। ध्यान के प्रकार की मीमांसा तथा फलश्रुति एवं ध्यान के स्वरूप को भी सूत्र रूप में बताया गया है। लेखक स्वगुरु से ज्ञान–ध्यान का आशीष प्राप्त कर चुके हैं, स्वयं भी ध्यान लगाने के अभ्यासी हैं तथा पूर्वाचार्यों की पुराकृतियों के अध्येता हैं। अतः ध्यान जो साक्षात् मोक्ष का कारणभूत है उसकी परिचर्चा समीचीन है। त्रियोग की सम्यक् समन्वयता में जो शुक्ल ध्यान होता हैं वह मोक्ष प्रदायक, जन्म–मरण के शोक का निवारक होता है। अतः आचार्यश्री ने उसकी विवेचना काव्यात्मक सूत्ररूप में की है जो स्तुत्य है। कृति कला–पक्ष और भाव–पक्ष की उपयुक्तता के साथ आध्यात्मिक रसानुभूति का आनन्द देने वाली है।

मुझे आशा है कि पाठक वृन्द इस कृति को पढ़कर आनन्दित तो होंगे ही जीवन को सार्थक करने के लिए ध्यान की प्रक्रिया को समझ और अन्यान्य आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय करने को प्रेरित होंगे। पूज्य गुरुदेव के आश्रय में ध्यान का अभ्यास कर शिवत्त्व की और बढ़ें यही मेरी अन्तर्कामना है। मैं भी गुरुभक्ति और श्रुत–आराधना के साथ–साथ ध्यान का सम्यक् स्वरूप पा सकूं। इसी भावना के साथ परमपूज्य आचार्यश्री के चरणों में कोटिशः नमोस्तु।

गुरु चरणों में नमन कर, चाहूँ सम्यक् ध्यान।
गुरो कृपा हो विमल मति, पाऊँ सम्यक् ज्ञान।।

सम्पर्क सूत्र
1/344, सुहाग नगर,
फिरोजाबाद (उ.प्र.)
05612230315/09927417410

गुरुचरणानुरागिनी
प्रो. डॉ. विमला जैन 'विमल'
स. सम्पादिका–जैन महिलादर्श
पू. संयुक्त मंत्री–अ.भा.दि. जैन
विद्वत् परिषद्

मन्तव्य

'सम्यक् ध्यान शतक' आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज की एक श्रेष्ठ कृति है। इस सम्यक् ध्यान शतक को आद्योपान्त एक–एक अक्षर सह ध्यान से पढ़ा। मुझे महद् आनन्द आया जिसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। ध्यान के सम्बन्ध में इतनी अच्छी विवेचना पद्य रूप में प्रथम बार अध्ययन के लिए मिली। ध्यान के सम्बन्ध में यह विवेचना सहज ही बोधगम्य और आत्मसात् करने योग्य है।

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डक, ज्ञानार्णव, जैसे ग्रन्थागमों को आधार बनाकर आत्म–ध्यान जैसे विषय को सर्व स्तरीय पाठकों के लिए सरल पद्य के रूप में रचित किया है। वस्तुतः यह उत्तम कृति वास्तविक ध्यान के स्वरूप को समझने के लिए पर्याप्त है।

जिस प्रकार मंत्र संक्षिप्त होता है, परन्तु उसका प्रभाव असीमित होता है। उसी प्रकार इस कृति में वह सब कुछ आ गया है, जो ध्यान के सन्दर्भ में आज की आवश्यकता है। जैसे–

मंत्र–वाक्य का ध्यान हो, वीतराग शुभ रूप।
पदस्थ जानो ध्यान वह, हो एकाग्र स्वरूप।।
ओम् महा–यह–मंत्र है, परमेष्ठी का बीज।
द्वादशांग–सागर कहें, भवसुख, शिव की चीज।।

मुक्ति का मूल कारण आत्म–ध्यान ही है। वह एक सर्वमान्य तथ्य है। इसलिए प्रत्येक मुनि व श्रावक को ध्यान का स्वरूप समझना अत्यन्त आवश्यक है। यथा–

आतम में प्रकटें जहाँ, गुण अनन्त अभिराम।
सिद्ध बने परमात्मा, सिद्ध हुए सब काम।।

जैन मंदिरों में अरिहंत भगवान की जितनी प्रतिमाएं विराजमान हैं वे सभी ध्यान मुद्रा में ही हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि ध्यानावस्था ही धर्म परिणत अवस्था है। उत्कृष्ट ध्यानावस्था में वार्तालाप क्या अन्तर्जल्प भी छूट जाता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि ध्यानावस्था समूचे संसार की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है।

जिनागम में ध्यान के चार भेद आर्त्त, रौद्र, धर्म व शुक्ल ध्यान रूप से कहे गये हैं। उनका विषय भी अनेकानेक प्राचीन ग्रन्थों में आचार्यों ने अति विस्तार के साथ लिखा है। इस विस्तार में से इस कृति में आध्यात्मिक उपयोगी अति आवश्यक विषय को आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने पद्य रूप में समेटने का सफल प्रयास किया है।

इस कृति से ध्यान का मतलब तो समझ में आ ही जायेगा साथ ही साथ ध्यान के लिए जो तत्त्वज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है, वह भी स्पष्ट हो जायेगा।

जिस ध्यान से यह आत्मा–परमात्मा बनता है, उस ध्यान की चर्चा जैन आचार्य उमास्वामी कृत– तत्त्वार्थ सूत्र में इस प्रकार की गई है।

उत्तम–संहननस्यैकाग्र–चिन्ता–निरोधोध्यान–मान्त–र्मुहूर्त्तात्। उत्तम संहनन वाले के अन्तर्मुहूर्त्त तक एकाग्र चिन्ता का निरोध–ध्यान होता है। यह ध्यान उत्तम संहननवालों में ही होता है। जिस ध्यान से अष्ट कर्मों का विनाश होता है। जिससे मोह, राग/द्वेष का पूर्णतः अभाव होकर सर्वज्ञता प्राप्त होती है वह शुक्लध्यान है। जो आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है वह पहला शुक्लध्यान है। दूसरा शुक्लध्यान बारह वें गुणस्थान में होता है। तीसरा शुक्ल ध्यान तेरहवें गुणस्थान में होता है और चौथा शुक्ल ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है। पंचमकाल में शुक्लध्यान का सद्भाव नहीं है, लेकिन उत्कृष्ट धर्मध्यान तक आज भी पहुँच सकते हैं।

उक्त चार ध्यानों में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान तो संसार के कारण हैं और धर्मध्यान व शुक्लध्यान मुक्ति के कारण हैं। कवि ने कहा भी है–

अष्टापद, सम्मेद–गिरि, चम्पापुर, गिरिनार।
पावापुर को ध्याय जो, शीघ्र करे भव–पार।।
तीन–गुप्ति में लीन हो, मन, वच, तन को रोक।
करें ध्यान शिव–मोक्ष पा, जन्म–मृत्यु ना शोक।।

जिनागम में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरित्र रूप मुनि–मार्ग को समझे बिना धर्मध्यान संभव नहीं है। सामायिक एक ध्यान का ही रूप है। जो दिगम्बर परम्परा में व्रतधारियों में प्रचलित है। साधु–सन्तों के साथ व्रती श्रावक भी सामायिक करते हैं। अतः त्रिकाल सामायिक के रूप में सम्यक्–ध्यान को माना ही गया है। इस प्रकार आचार्यश्री ने ध्यान के संदर्भ में आचार्य जिनसेन के अनुसार बताया है कि ध्यान को

पद्मासन/खड्गासन आदि में किया जा सकता है। शरीर की जो भी अवस्था ध्यान का विरोध उत्पन्न करने वाली न हो उस अवस्था में अपनी सुविधानुसार ध्यान किया जा सकता है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने सम्यक्–ध्यान शतक में बताया है कि–

सदा धर्म–मय भाव हो, आवश्यक में लीन।
धर्मध्यान तब साथ हो, वही भव्य स्वाधीन।।

धर्म–ध्यान रहित जीवन व्यर्थ है इसलिए बाल्यकाल से ही धर्म संस्कार पाते हुए सांसारिक बंधन से छुटकारा पाकर मोक्षमार्ग में चलते हुए वीतरागी, निर्मोही, निर्दोष साधु बनकर मोक्षसुख के लिए, आत्मिक, अक्षय और अनन्तसुख में लीन हो जाने का जो आचार्यश्री का भाव है उसके प्रति अपार आनन्द है। उनकी यह 'सम्यक् ध्यान शतक' हमारे लिए और पाठकों के लिए एक परम आशीर्वाद बने ऐसा मेरा अभिप्राय है।

आचार्यश्री द्वारा जैनागम–संस्कार, तीर्थोदय–काव्य, परमार्थ–साधना, नेक–जीवन, बचपन का संस्कार, धर्मभावना शतक, आर्जव–कविताएं, आर्जव वाणी, जैनशासन का हृदय, आगम–अनुयोग तथा बारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधि–तन्त्र, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वसार और प्रश्नोत्तर रत्नमालिका का पद्यानुवाद इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं। उन्हें भी मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके लिए मैं अपना महान पुण्योदय मानता हूँ। परम पूज्य आचार्यश्री इसी प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा जिनवाणी की सेवा करते हुए धर्म एवं समाज को दिव्य साहित्यिक अवदान प्रदान कर संसार के भव्य प्राणियों को धर्म व मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते रहें, यही मेरी आन्तरिक भावना है।

प.पू. आचार्यश्री के चरणों में सादर नमोस्तु।

डॉ. बी.एल. सेठी
एम.ए., एम.फिल.,पीएच.डी., जैनदर्शनाचार्य, डी. लिट्
पूर्व अध्यक्ष – इतिहास विभाग,
सेठ मोतीलाल (पी.जी.) कॉलेज, झुन्झुनू (राज.)
मो.नं. 9414743340

एक अनुपम कृति
सम्यक्-ध्यान-शतक

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज सदैव जिनागम के स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, लेखन या ध्यान साधना में रत रहते हैं।

संसार के दुःखों से मुक्त होकर जो अनन्त जीव सुखी हुए हैं वे ध्यान अवस्था में ही हुये हैं। हमारी जिन प्रतिमाएं भी ध्यानस्थ स्वरूप में ही होती हैं। जिनागम में ध्यान पर विपुल साहित्य है। वर्तमान युग में तो ध्यान; शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से ही बहुत प्रचारित विषय एवं प्रक्रिया है। ध्यान तो प्रत्येक मानव या जीव को प्रत्येक क्षण रहता है, परन्तु ध्यान के वास्तविक स्वरूप से जो शाश्वत सुख की प्राप्ति का कारण है उससे बहुत कम जीव परिचित हैं। इस सम्बन्ध में निम्न कथन दृष्टव्य है।

ध्यान–ध्यान सभी कहें, ध्यान जाने न कोय।
ध्यान मर्म जाने बिना, ध्यान कहाँ से होय।।

उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री की आज के वातावरण में यह अनुपम कृति है। गद्य की अपेक्षा यह कृति पद्यबद्ध है। पद्य की विद्या अधिक लोकप्रिय रहती है क्योंकि पद्य को बारम्बार गुनगुनाने से वह अधिक प्रभावक रहता है। यह गागर में सागर की लोकोक्ति को चरितार्थ करती है। ध्यान की यह बड़ी सरल कुँजी है। सहज एवं सुबोध है। योग, ध्यान विषय पर मेरी रुचि को देखते हुए आचार्यश्री ने मुझे सम्यक्–ध्यान–शतक की एक स्व–हस्तलिखित प्रति उपलब्ध कराई। जिससे मुझे इसका आदि से अन्त तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसे मैं पूर्व पुण्य कर्म का फल ही समझता हूँ।

इस कृति में 113 पद्य हैं। 113 अंक का भी अपना ही आध्यात्मिक महत्त्व है। एक अर्थात् आत्मा सो तेरा जो भेद विज्ञान का परिचायक है जो कि मोक्ष प्राप्ति में मूल कारण है।

"एक सौ तेरह पद्य" हैं, ध्यान शतक में पूर्ण।
ध्यान करें निज एक सो, तेरा है सम्पूर्ण।।

इसमें धर्मध्यान के स्वरूप के अलावा धर्म से शान्ति का उपाय,

भावनायें जो धर्म–ध्यान में सहायक हैं, मंत्र विज्ञान, धारणाओं का सहज सरल स्वरूप, आर्त्त और रौद्र ध्यान जिनके छोड़ने पर ही धर्म–ध्यान होता है। ध्यान की पूर्व भूमिकाएं द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव इन्द्रिय संयम (प्रत्याहार) आसन, आहार जिसकी ध्यान में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, वह भी है। जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। ध्यान की अन्तिम स्थिति शुक्ल–ध्यान है जो मोक्ष का साक्षात् कारण है। काव्य–कृति का बहुत ही सरल भाषा में विवेचन किया गया है। कृति रचना में क्षेत्र का भी प्रभाव रहता है। इस कृति की रचना आचार्यश्री ने गोपाचल सिद्ध क्षेत्र पर की है जहाँ से सुप्रतिष्ठित केवली ने निर्वाण प्राप्त किया था। प्रस्तुत कृति के निम्न पद्य विशेष रूप से चिन्तनीय हैं–

मन यह वानर सम कहा, बड़ी चपलता मान।
ज्ञान, ध्यान में लीन जब, आत्म–शान्ति सुख जान।।
अक्ष–खिड़कियों से सदा, विषय–पवन का जोर।
अगर बंद हों खिड़कियाँ, निज–सुख की हो भोर।
मन पूरे जग में फिरे, एक जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान।।

आचार्यश्री आर्जवसागर जी इस अनुपम कृति के लिए अभिनन्दनीय हैं। उन्हें अन्तरंग से नमोस्तु तथा अन्तिम यही मंगल भावना है कि सर्व मुमुक्षु आर्त्त और रौद्र ध्यान छोड़कर मोक्षमार्ग के पथिक बनें विधिपूर्वक धर्म ध्यान कर कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष को पावें।

इससे पूर्व आचार्यश्री ने जिनागम के रहस्यों को एवं जीवन जीने की कला समझने के लिए सरल, सुबोध भाषा में अनेक रचनायें भी की हैं, जिनमें जैनागम संस्कार, तीर्थोदय काव्य, आदि अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

आचार्यश्री के चरणों में नमोस्तु।

मंगल हो।

बाबूलाल सेठी (जैन)
M. Com., S.A.S., A.I.C.W.A., A.C.S.
अध्यक्ष– आरोग्य भारती जयपुर
12, मिलापनगर, टोंक रोड़, जयपुर (राज.)

सम्यक्-ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया

आचार्यश्री आर्जवसागर

'ध्ये चिंतायाम्' धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न होता है। जो चिंतवन, मनन करने के अर्थ में है। तत्त्वार्थसूत्र में एकाग्र चिंता निरोध के सूत्र में एक का अर्थ केवल अर्थात् आत्मा और अग्र पद का अर्थ मुख है जो एक अग्र होता है वह एकाग्र है। निरोध का अर्थ नियंत्रण या रोकना कहलाता है। अन्य पदार्थ में अमुख अर्थात् हटकर या निर्वृत्त होकर एक आत्म पदार्थ में चिंतवन का स्थिर रहना सम्यक्-ध्यान कहलाता है। शुक्लध्यान रूपी उत्कृष्ट ध्यान की अपेक्षा अग्र का अर्थ प्रथम या मुख्य होता है। जिससे ध्याता को सभी पदार्थों में प्रथम अपनी आत्मा ही होती है और तत्त्वों में अग्रण्य होने से भी अग्र शब्द से आत्मा का स्मरण किया गया है। तो केवल आत्मा के ध्यान में चित्त-वृत्ति का नियंत्रण होना उत्तम ध्यान है।

संसार में जीव कर्म से बध्य होकर अनादिकाल से चतुर्गति परिभ्रमण कर रहा है। वह जीव जब वीतरागी देवाधिदेव अरिहन्त भगवान, निर्ग्रंथ-गुरु और समीचीन शास्त्र को निमित्त बनाकर इन पर अगाढ़ भक्ति धारण कर और इनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर अटूट श्रद्धा धारण कर आत्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान कर उसकी श्रद्धा करके निर्ग्रन्थ बन उसी में लीन होता है तो संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुक्ति के साधन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव में अजीव रूप कर्म का आना आश्रव है और कर्म का जीव के साथ बँध जाना बंध है। ये आश्रव, बन्ध ही संसार के प्रधान कारण हैं और संसार के अभाव रूप मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा हैं। संवर और निर्जरा का प्रधान कारण सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं और सम्यक्चारित्र में तप भी गर्भित है और तप बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। अभ्यन्तर तप के भेदों में एक भेद ध्यान है। तत्त्वार्थ सूत्र में **'आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि'** सूत्र के द्वारा ध्यान चार प्रकार का बतलाया गया है। अगले सूत्र में **'परे मोक्ष हेतु'** अर्थात् बाद

वाले धर्म, और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं। एतदर्थ पारिशेष न्याय से **'पूर्वे संसार हेतु'** अर्थात् पूर्व कथित जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे संसार के कारण हैं स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। इसी कथन से यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि जो साक्षात् और परम्परा से मोक्ष के कारण रूप धर्म और शुक्लध्यान हैं वे शुभ रूप ध्यान हैं और संसार के कारण रूप जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे अशुभ रूप ध्यान हैं यदि कदाचित् कोई भव्य कहे कि मुझे ध्यान का अभ्यास करना है; तो कहा जावेगा कि संसार के प्रत्येक प्राणी को अशुभ ध्यान का अभ्यास अनादिकाल से चल ही रहा है, परन्तु शुभ-ध्यानों के लिए विशिष्ट पुरुषार्थ रूप सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान, चारित्र अथवा संवर, निर्जरा के साधन रूप गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय और चारित्र की अनिवार्यता होती है।

परिग्रहवान मोही संसार के सर्व प्राणी चिंताओं में उलझे हुये हैं। जिनके हिय में आकुलता-व्याकुलतामय परिणामों से आर्त्त, रौद्र ध्यानों की निरन्तरता बनी रहती है और जब तक तत्त्व-चिंतन के साथ धर्मध्यान नहीं होता तब तक चित्त-वृत्ति के निरोध के साथ समीचीन अर्थात् सम्यक्ध्यान सम्भव नहीं। समाधि-तन्त्र में कहा है कि-जिस ध्यानी साधक का मन रूपी जल राग-द्वेष आदि लहरों से चंचल (चलायमान) नहीं होता वही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को देखता है। अन्य जन उस आत्म-तत्त्व का दर्श नहीं कर सकते।

श्लोक: रागद्वेषादि कल्लोलैरलौलं यन्मनो जलं।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनं॥ 35॥

– समाधितन्त्र

कितने ही दार्शनिक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठों को योग का अंग मानते हैं और कोई दार्शनिक यम, नियम को छोड़कर मात्र छह को योग का अंग मानते हैं। शुभचन्द्राचार्य ने कहा है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष, तत्त्व-निर्णय और जनपद त्याग इन छः से मुनि की योगों की सिद्धि होती है। और भी कहा है कि गुरु -उपदेश, उपदेश पर भक्ति, दृढ़ श्रद्धा, तत्त्व चिंतन और मन की स्थिरता ये सम्यक्-ध्यान के प्रधान साधन हैं। योग के अष्ठ अंगों का समीचीन अर्थ ध्यातव्य है कि –

1. यम :- अहिंसादि व्रतों का जीवन पर्यन्त धारण करना यम है।

2. नियम :- देवपूजा आदि नियत कालिक षट्-कर्म और नियत कालिक भोगोपभोग-परिमाण का नियमन करना नियम है।

3. आसन :- निश्चल और दृढ़ आसन जैसे-पद्मासन, अर्ध पद्मासन, खड्गासन इत्यादिक को आसन माना जाता है। ज्ञातव्य रहे कि आसनों के साथ खड्गासन में खड़े व्यक्ति के पैरों की एड़ियों के बीच चार अंगुल का अंतर हो और दोनों अंगूठों के बीच कम-से-कम चार या अधिक-से-अधिक बारह अंगुल का अन्तर हो। पद्मासन में बैठते समय पहले बायाँ फिर दायाँ पैर जंघा पर हो तथा दोनों पञ्जों के बीच हाथ पर हाथ रखते हुए बाँया फिर दाहिना हाथ हो। रीढ़ और मुख सीधा, दृष्टि (नजर) नाशाग्र की सीध में दूर जाती हो।

4. प्राणायाम :- पूरक, कुम्भक और रेचक इनके द्वारा वायु के संचार से प्राणायाम किया जाता है। वायु का अन्दर ग्रहण पूरक है। वायु का उदर में धारण कुम्भक और बहिर्गमन रेचक कहलाता है।

5. प्रत्याहार :- भोग विषयों से चित्त का निरोध हो जाने पर इन्द्रियों को अपने वश में करके जो स्वाधीन अवस्था की प्राप्ति करना प्रत्याहार कहलाता है।

6. धारणा :- चित्त को नाभिमण्डल, हृदय-कमल, ओष्ठ, नासिका, ललाट और सिर आदि में अथवा पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्त्व-धारणा का आलम्बन लेकर एकाग्रता में लीन होकर निराकुल अवस्था को प्राप्त करना धारणा कहलाता है।

7. ध्यान :- एक ही तत्त्व में स्थिरता पूर्वक जो चिंतन किया जाता है उसका नाम ध्यान है।

8. समाधि :- जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय इन विकल्पों से रहित आत्म-तल्लीनता रूप शून्य के समान अर्थ प्रतिभास रूप अवस्था आती है उसे निर्विकल्प- समाधि कहा जाता है।

जैन-दर्शन में इसे निर्ग्रन्थों के जीवन में निर्विकल्प-समाधि कहा जाता है।

जिसे शुद्धोपयोग की उत्कृष्ट अवस्था या शुक्ल-ध्यान रूप से इंगित किया जाता है।

विद्वानों ने धर्म-ध्यान के पश्चात् प्राणायाम की व्याख्या करते हुए प्रथमतः यह निर्देशित किया गया है कि अपने सिद्धान्त का भले प्रकार निर्णय कर लेने वाले मुनियों ने ध्यान की सिद्धि के निमित्त मन की स्थिरता के लिए प्राणायाम की प्रशंसा की है। इसलिए बुद्धिमान भव्य जनों को उसे प्राप्त करना चाहिए क्योंकि इसके बिना मन पर विजय प्राप्त करना शक्य नहीं है। आचार्यों ने प्रत्याहार के लिए समाधि सिद्धि हेतु नियामक रूप से प्रशंसनीय बतलाया है। ज्ञानार्णव शास्त्र में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं कि –

निःसंगः संवृतस्वान्तः कूर्मवृत्संवृतेन्द्रियः।
यमी समत्वमापन्नो ध्यानतन्त्रे स्थिरी भवेत्॥ 1457॥

अर्थात् जो मुनि परिग्रह से निर्ममत्व हो चुका है जिसका मन सावद्य प्रवृत्ति से रहित है। तथा जिसकी इन्द्रियाँ कछुए के समान संकुचित हैं स्वाधीन हो चुकी हैं वह समता-भाव को प्राप्त होता हुआ ध्यान की सिद्धि में दृढ़ होता है। तदुपरान्त प्रत्याहार की महिमा प्राप्त आत्मा के लिए प्राणायाम की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्राणायाम से अपने प्राण या शरीर बाधित होते हैं।

सम्यक् समाधि सिद्ध्यर्थं, प्रत्याहारः प्रशस्यते।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनः स्वास्थ्यं न विन्दति॥ 1459॥
पूरणे, कुम्भने चैव तथा श्ववसननिर्गमे।
व्याग्रीभवन्ति चेतोसि क्लिश्यमानानि वायुभिः ॥ 1465॥

– ज्ञानार्णव

अर्थात् प्राणायाम को अस्वस्थ-कर कष्टप्रद व मुक्ति की प्राप्ति में बाधक कहा गया है। ध्यान का अधिकारी कौन होता है? इसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि –

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
निर्ममत्वं यदि प्राप्तस्तदा ध्यातासि नान्यथा॥ 269॥

– ज्ञानार्णव

अर्थात् यदि तू कामभोगों से विरक्त होकर शरीर के विषय में निस्पृह होता हुआ निर्ममता को प्राप्त हो चुका है तो ध्यान का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं।

सम्यक् ध्यान की प्रसिद्धि हेतु सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का होना अनिवार्य है।

सुयोग्य द्रव्य :- भव्य आत्मा स्वयं ही आधार, ध्याता और साध्य रूप जीव द्रव्य कहलाता है। स्वस्थ शरीर, श्रेष्ठ-संहनन, पद्मासन, सिद्धासन, खड्गासन आदि आसन और सात्विक, शुद्ध, प्रासुक आहार ये सब अजीव द्रव्य कहलाते हैं।

सुयोग्य क्षेत्र :- आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि -

एकान्ते सामायिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषू च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥ 99॥

- रत्नकरण्डक

अर्थात् एकान्त क्षेत्र जो कि बाधारहित (कोलाहल, सांसारिक विषयों से रहित) वन, गृह या चैत्यालय रूप हो ऐसे क्षेत्र पर प्रसन्न चित्त के साथ सामायिक बढ़ाना चाहिए क्योंकि इसके बिना ध्यानाभ्यास का होना प्रायः असम्भव होगा। परन्तु सुदर्शन मुनीश्वरादि जैसी अभ्यस्त आत्माएँ किसी भी बाधित स्थल में भी ध्यान लीनता को प्राप्त कर सकती हैं।

सुयोग्य काल :- संध्या या सन्धिकाल जिसमें सुषुम्णा नाड़ी (सूर्य और चन्द्र दोनों स्वर रूप) चले ऐसा सुबह, मध्यान्ह और सायं काल ध्यान के लिए उपयुक्त काल समझना चाहिए। ऐसे काल में ध्यान की एकाग्रता व समता रूप सामायिक सहजता से वृद्धि को प्राप्त होती है।

सुयोग्य भाव :- ''समता सर्व भूतेषु, संयमे शुभ भावना।
आर्त्त, रौद्र परित्यागस् तद्धि सामायिकं मतं॥''

अर्थात् सब जीवों में राग-द्वेष रहित साम्य-परिणामों का होना, संयम-मय अर्थात् प्राणियों की रक्षा करते हुए 25, 16 आदि सत्तर

प्रकार की भावनाएँ चिन्तवन में लाना और आर्त्त तथा रौद्र ध्यानों का विसर्जन (त्याग) करना; साथ ही आज्ञा-विचय, अपाय-विचय, विपाक-विचय और संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान का चिंतवन-मन्थन अपनी आत्मा में करते हुए एकाग्रता को प्राप्त कर लेना सुयोग्य भाव कहलाता है।

आत्मा में अनादि काल से विषय-कषायों के पनाले बह रहे हैं जिनकी वासना से मन को स्थिर बनाना और धर्मध्यान की ओर आकृष्ट करना प्रत्येक आत्मा के वश की बात नहीं है लेकिन जो व्यक्ति वानर जैसे चंचल जीवन या मन रूपी भूत को दान, पूजादिक धार्मिक कार्यों में अनुरक्त करता है और कोई विशेष भव्य-आत्मा पंचेन्द्रियों के झरोखों से आने वाले इन्द्रिय-भोग-विषयों की वायु को रोककर कछुये के सदृश अपने इंद्रिय व्यापार को विराम देकर यम, नियम, आसन आदि के साथ सुयोग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के साथ ध्यान में लीन होता है तब वह निस्तरंग जल में मुख दिखने के सदृश अपनी आत्मा में अपनी आत्मा का दर्शन करने लग जाता है।

सारे जगत् में भागते मन से न तो ध्यान हो सकता है और न ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है। परिग्रह के ममत्व से ध्यान की ऊर्जा बहिर्गामिनी होती है। काम वासना से ऊर्जा अधोगामिनी होती है और सम्यक् ध्यान से ऊर्जा ऊर्ध्वगामिनी होती है। जगत् की ओर भागनी वाली ऊर्जा ने आज तक हमारे अष्ट कर्मों को नहीं जला पाया जैसे कि सूर्य की किरणें सभी ओर फैल रही हों तो भारी गर्मी में भी धूप में पड़े कागज को वे नहीं जला पातीं लेकिन जब दूरबीन (लैन्स) से किरणों को केन्द्रित करके एक स्थान पर छोड़ते हैं तो कागज जल उठता है वैसे ही सम्यक् (समीचीन) शुक्ल-ध्यान से कर्मों रूपी ईंधन जल जाता है और आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा व सिद्ध बन मोक्ष-अवस्था पाकर अनन्त काल के लिए अनन्त ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न हो लोक-शिखर पर विराजमान हो जाता है।

इत्यलं।

सम्यक्-ध्यान-शतक

मंगलाचरण

1. सिद्ध-देव जिन श्रेष्ठ हैं, परमेष्ठी-पद रूप।
नमता सम्यक्-ध्यान में, बनूँ आप्त-अनुरूप॥

सिद्ध-देव जो श्रेष्ठ जिनवर हैं वे परमेष्ठी-पद में स्थित हैं उन्हें मैं समीचीन-ध्यान में नमन करता हूँ जिसके फलस्वरूप मैं भी उनके समान सिद्ध-अवस्था को प्राप्त कर सकूँ।

भूमिका

2. पर-पदार्थ संयोग से, कर्म-बंध संसार।
भोग-तजे चिंता मिटे, ध्यान-करें भव-पार॥

आत्मा से भिन्न पर-पदार्थों के मिलने पर उनमें आसक्ति होने से कर्मों का (पापों का) बंध होता है जिससे संसार में परिभ्रमण होता है और सांसारिक विषय-भोगों के त्याग कर देने पर चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप सम्यक्ध्यान प्रकट होता है अंत में आत्मा संसार रूपी समुद्र से पार हो जाती है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

संसार का लक्षण

3. कर्म-बंध गति आगति, होते जिसमें काम।
चारों गतियों में भ्रमण, जिसका भव है नाम॥

जिसमें कर्मों का बंध, जन्म-मरण और देव, मनुष्य, नरक तथा तिर्यंच गति में भ्रमण चलता रहता है उसका नाम संसार है।

मोक्ष का स्वरूप

4. सर्व-कर्म का नाश जब, जहाँ होय वह मोक्ष।
निर्ग्रन्थों को प्राप्त हो, सिद्ध बनाता मोक्ष॥

जब निर्ग्रन्थ-मुनियों के जहाँ सभी अष्टकर्मों का क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है, यह मोक्ष सिद्ध-परमात्मा बना देता है।

भव्य का लक्षण

5. रत्नत्रय-मय मोक्ष-मग, पाता है वह भव्य।
मोक्ष-मार्ग अरु मोक्ष को, पाता नहीं अभव्य॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित रूप रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग को जो प्राप्त कर सकता है वह भव्य जीव कहलाता है तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष को जो प्राप्त नहीं कर सकता वह अभव्य जीव कहलाता है।

धर्माधार दया

6. वस्तु-स्वभावरु धर्मदश, रत्नत्रय हैं धर्म।
दया-धर्म आधार है, जिसके बिना अधर्म॥

वस्तु-स्वभाव, दसधर्म, रत्नत्रय और दया ये धर्म कहे गये हैं जिनमें दया-धर्म के बिना सभी अधर्म जानना चाहिए।

लक्ष्य और सोपान

7. वस्तु-स्वभाव सु-लक्ष्य हो, सच्चा-सौख्य स्वरूप।
दया आदि सोपान हैं, शिव-मंजिल अनुरूप॥

वस्तु-स्वभाव हमारा उत्तम लक्ष्य है वह सच्चेसुख स्वरूप माना गया है। दया, रत्नत्रय और दसधर्म ये वस्तु-स्वभाव रूप मोक्ष-मंजिल की सीढ़ियाँ कही गई हैं।

विशेषः क्रोध का अभाव रूप परिणाम क्षमाधर्म कहलाता है, मान का अभाव या मृदुता का भाव मार्दवधर्म कहलाता है, मायाचार का अभाव या सरलता रूपभाव आर्जवधर्म कहलाता है, निर्लोभता या पवित्रता का नाम शौचधर्म कहलाता है, अहितकर-वचनों का त्याग या सज्जनों से हितकर-वचन बोलना सत्यधर्म कहलाता है, इन्द्रियों को पाप-कार्य से बचाना संयमधर्म कहलाता है, कर्म-क्षय के लिए उपवासादि अनुष्ठान तप-धर्म कहलाता है। संयत लोगों के लिए रत्नत्रयपालन का उपदेश, नियम देने रूप मुनियों का त्यागधर्म कहलाता है, निजात्मा के अलावा परमाणुमात्र भी पर, वस्तु में मोह नहीं होना आकिञ्चन्यधर्म कहलाता है और सर्व महिलाओं से वैराग्य-भाव तथा आत्मलीनता रूप परिणाम का होना ब्रह्मचर्यधर्म कहलाता है। ये सभी दशों धर्म मोक्ष-प्राप्ति की भावना से पालन किए जाते हैं, अतः ''उत्तम'' इस विशेषण से युक्त होते हैं। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय आहारों का त्याग करना उपवास, भूख से कम खाना अवमौदर्य, कोई नियमपूर्वक आहार लेना वृत्ति-परिसंख्यान, दुग्ध या नमक आदिक का त्याग करना रसपरित्याग, एकान्त-स्थान में शय्या व आसन लगाना विविक्त-शय्यासन और समता पूर्वक कष्टों को सहन करना कायक्लेश तप कहलाता है, ऐसे ये छह बहिरंग तप हैं। तथा दोषों का परिमार्जन करना प्रायश्चित्त, वीतराग का आदर व नमनादि करना विनय, निर्ग्रन्थों की सेवा वैय्यावृत्त, आगम का

पठनादि करना स्वाध्याय, शरीरादि पर पदार्थों से निस्पृह हो परमात्मलीनता रूप रहना व्युत्सर्ग और धर्म, शुक्ल रूप परिणाम ध्यान तप कहलाता है, ऐसे ये छह अंतरंग तप हैं।

आत्महित कैसे?

8. **आतम-हित शिव-सौख्य है, आकुलता से दूर।**
रत्नत्रय से प्राप्त हो, आत्म-गुणों से पूर॥

आत्मा का हित; आत्म-गुणों से परिपूर्ण मोक्ष-सुख रूप है उस सुख में इन्द्रिय-विषयों की इच्छा रूप आकुलता नहीं होती और वह सुख रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग से प्राप्त होता है।

ध्यान-साधना हेतु चिन्तवन

9. **मन यह वानर-सम कहा, बड़ी चपलता मान।**
ज्ञान, ध्यान में लीन जब, आत्मशांति सुख जान॥

अपना मन बड़ा ही चंचल बंदर सदृश मानना चाहिए। हम जब मन को एकाग्र करके ज्ञान-ध्यान में लीन हो जाते हैं तब बड़ी शान्ति व सुख की प्राप्ति होती है।

❖

10. **मनस्-भूत को धर्म में, सदा लगाना ज्ञान।**
पाप-बंध से दूर हों, पाते समता ध्यान॥

मन रूपी भूत को खाली छोड़ने की बजाय धर्म-कार्य में लगाना यह ज्ञानीपुरुष का कार्य है। जिसके फलस्वरूप हम पाप-कर्म के बंध से दूर होकर समता और ध्यान की प्राप्ति कर लेते हैं।

❖

11. अक्ष-खिड़कियों से सदा, विषय-पवन का जोर।
अगर बंद हों खिड़कियाँ, निज-सुख की हो भोर॥

इन्द्रिय रूपी खिड़कियों से हमेशा आने वाली पंचेन्द्रियों के विषयों की वायु बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। अगर इन्द्रिय रूपी खिड़कियों को बंद कर अपनी आत्मा की ओर ध्यान लगायें तो अपने आत्म-सुख की सुबह हो जावे।

❖

12. पैर व मुख अन्दर करे, कछुआ पीठ दिखाय।
बाधक से ध्यानी बचे, संयम-सुख महकाय॥

बाधक से बचने के लिए जैसे कछुआ अपनी पीठ की आड़ में पैर और मुख अन्दर की ओर सुरक्षित रख लेता है, वैसे ही ध्यानी अशुभ-कर्मों के आस्रव से बचने के लिए ध्यान व एकाग्रता की सहायता से अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने काबू में कर संयम और सुख की सुगंधि पाता है अर्थात् अलौकिक-सुख का अनुभव करता है।

❖

13. वायु बहती वेग से, जल में उठें तरंग।
विषयों की वायु रुके, निर्मल आत्म विरंग॥

जैसे हवा के तीव्र गति से बहने पर जल में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और उस जल में हमें अपना प्रतिबिम्ब (छाया) दर्शित नहीं होता वैसे ही मोही के लिए विषय-वासना की वायु से आत्मा का दर्शन नहीं होता और जब योगी विषय-वासनामुक्त होकर या निर्मोही सांसारिक व्यवहार से दूर होकर अपनी आत्मा को ध्यान से निश्चिंत-शान्त बना लेता है तब निर्मल-विरंग आत्मा का दर्शन होता है।

❖

14. रवि-किरणें बिखरी तपें, कागज जला न देत।
काँच साथ दुर्बीन का, भष्मसात् कर देत॥

सूर्य की किरणें पूरे जग में फैल कर तपती हुई भी कागज को जला नहीं पातीं लेकिन दुर्बीन के कांच द्वारा सभी किरणों को केन्द्रित कर कागज पर स्थिर रखने से थोड़े समय में ही कागज जलकर भष्म हो जाता है।

❖

15. मन पूरे जग में फिरे, एक-जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान॥

मानव का मन जब तक पूरे जग में भटकता रहता है तब तक एकाग्रता पूर्वक आत्मा का ध्यान संभव नहीं होता और जब उत्तम-शक्ति (वज्रवृषभनाराच संहनन) के साथ निर्ग्रन्थ बन एकाग्र होकर अपनी आत्मा पर अन्तर्मुहूर्त्त काल तक शुक्लध्यान लगाया जाता है तब घातिया-कर्मों का क्षय हो जाता है और केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

[वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्ग्रन्थ, अन्तर्मुहूर्त्त, घातियाकर्म और केवलज्ञान का अर्थ देखिये अन्त में दिये शब्द कोष में।]

ध्यान की अवस्थायें

16. समता, ध्यान-समाधि वा, गुप्ति, शुद्ध-उपयोग।
निजानुभव निश्चय कहो, यथाख्यात सत्योग॥

समता, गुप्ति, शुद्धोपयोग, ध्यान- समाधि, निजानुभव, निश्चय और यथाख्यात ये सभी समीचीन-योग की वृद्धि रूप अवस्थायें हैं। (इसका वर्णन आगे किया गया है।)

ध्यान के योग्य सामग्री

17. **द्रव्य, क्षेत्र, सु-काल सह, भाव जीव जब पाय।**
समता ध्यानादिक मिलें, सुयोग्य वह बन जाय॥

सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये सभी जब जीव प्राप्त करता है तभी जीव को समता व ध्यानादिक प्राप्त होते हैं और वह मोक्षमार्ग के योग्य बन जाता है।

ध्यान हेतु द्रव्य

18. **जीव-द्रव्य आधार है, ध्याता, साध्य, स्वजीव।**
संहनन आदि अजीव हैं, हेतु देव, गुरु जीव॥

ध्यान के लिए जीव- द्रव्य आधार रूप माना है। ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला, साध्य अर्थात् जिसकी साधना करना है वह अपना जीवात्म रूप द्रव्य है और संहनन आदि अजीव-द्रव्य कहे गये हैं। इसी तरह साधन रूप वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु जीव-द्रव्य कहलाते हैं।

संहनन

19. **वज्रवृषभनाराच यह, संहनन श्रेष्ठ सुजान।**
शुभ-ध्यानी बन कर्म-क्षय, होवे मोक्ष महान॥

वज्रवृषभनाराचसंहनन ध्यान के लिए उत्तम-संहनन जानना चाहिए इसी संहनन से शुक्ल-ध्यान द्वारा कर्मों का क्षय कर आत्मा महान मोक्ष-पद को पा लेती है।

आसन

20 खड्गासनरु पद्मासन, सिद्धासन का योग।
वीरासनरु वज्रासन, ध्यानी बने अयोग॥

खड्गासन, पद्मासन, सिद्धासन, वीरासन और वज्रासन आदि से ध्यान करके ध्यानी-योगी कर्मों से मुक्त होकर योग की उपरिम व उत्कृष्ट अयोग अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

आहार

21. अशन राजसिक, तामसिक, जिसे छोड़ना श्रेष्ठ।
सात्विक, प्रासुक हो अशन, ध्यान बढ़े, वय जेष्ठ॥

राजसिक, तामसिक भोजन छोड़कर सात्विक भोजन को प्रासुक करके ग्रहण करना श्रेष्ठ कार्य है जिसके फलस्वरूप ध्यान की वृद्धि होती है और ध्यानी लम्बी उम्र का जीवन जीता है।

❖

22. नशा, आमिस, कंद तज, निशि में छोड़े भोज।
मर्यादित, शोधित-अशन, स्वस्थ-ध्यान हो रोज॥

ध्यान को चाहने वाला अगर मांस, नशीले पदार्थ, कंदमूल तथा रात्रि-भोजन छोड़कर मर्यादित व शोधन किये गये भोजन का सेवन करता है तो नित्य-प्रतिदिन स्वस्थ-ध्यान की प्राप्ति होती है।

❖

23. एक बार भोजन करे, योगी वह कहलाय।
दोय बार भोगी करे, त्रय रोगी हो जाय॥

जो चौबीस घण्टों के अंदर; दिन में एक बार भोजन करता है वह योगी कहलाता है। जो दो बार भोजन करता है वह भोगी कहलाता है तथा जो तीन बार भोजन करता है वह रोगी कहलाता है, उसे ध्यान की प्राप्ति अतिदुर्लभ है।

❖

24. अर्द्ध-उदर भोजन करे, दुगुना-जल, हो ध्यान।
तिगुना-परिश्रम जो करे, शतायु हो धीमान॥

जो योगी आधा पेट अन्न से भरकर उससे दुगुने जल का सेवन करते हुए तिगुना परिश्रम करता है अर्थात् पूर्ण दिवस निस्प्रमाद व्यतीत करता है उस योगी की उम्र शतवर्ष तक चल सकती है।

❖

25. खोवा, मेवा आदि हैं, जहाँ पदार्थ गरिष्ठ।
जो पदार्थ रुचिकर लगें, कहलाते हैं इष्ट॥

मावा और कुछ मेवे आदिक पदार्थ गरिष्ठ (भारी) पदार्थ कहलाते हैं और जो पदार्थ मन के लिए अत्यन्त प्रभावित करते हैं या जिनके बिना भोजन नहीं रुचता वे इष्ट-पदार्थ कहलाते हैं।

बाधक-तत्त्व

26. इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ वा, स्त्री का संसर्ग।
व्यसन सभी सद्ध्यान में, बाधा दें उपसर्ग॥

इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ एवं स्त्री का सम्पर्क (स्त्रियों को भी पुरुषों का सम्पर्क) तथा सप्त-व्यसन ये सभी समीचीन-ध्यान में बाधक और उपसर्ग के समान होते हैं।

साधक को लाभ

**27. एकाशन उपवास हो, हल्केपन-सह ध्यान।
ना प्रमाद-निद्रा जगे, मुनि-अनुभूति सुजान॥**

एकाशन एवं उपवास के दिन बहुत ही हल्केपन के साथ या निश्िंचत और निर्भार मन के साथ ध्यान सम्पन्न होता है। प्रमाद रूप निद्रा आने की संभावना नहीं होती; ऐसी मुनिजनों की अनुभूति है ऐसा जानो।

❖

**28. स्पर्शन, रसना रहीं, काम-इन्द्रियाँ जान।
कामजयी के ऊर्ध्व में, वहे ऊर्जा मान॥**

स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियाँ कामेन्द्रियां हैं इन कामेन्द्रियों को जीतने वाले व्यक्ति की ऊर्जा ऊर्ध्वगति की ओर पहुँचाने वाली ऊर्ध्वगामिनी होती है, ऐसा मानना चाहिए।

ध्यान की सुयोग्य विधि व प्रक्रिया

**29. ममत्व तन का त्याग हो, कायोत्सर्ग महान।
आवर्त नमन साथ हो, निषद्या सह सु-ध्यान॥**

शरीर के ममत्व (एवं अन्य पदार्थों के ममत्व को) छोड़कर खड़े होकर ध्यान करना कायोत्सर्ग कहलाता है। चारों दिशाओं में तीन-तीन आर्वत करना (घड़ी के कांटे घूमने की दिशा में करमुकुल-अंजुली को घुमाते हुए) हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमन करना एवं दो बार गवासन में (पूर्व व उत्तर में) बैठकर नमन रूप निषद्या से प्रणाम के साथ ध्यान करना (पूर्व व उत्तर दिशि में मुखकर) यह सम्यक्ध्यान या सामायिक कहलाती है।

❖

30. **नेत्र खुले ना बंद हों, नाशा-दृष्टि सुहाय।**
अधो दाँत फिर ऊर्ध्व की, पंक्ति सुसौम्य कहाय॥

ध्यान करते समय अपने दोनों नेत्र न अधिक खुले हों और ना हि बंद हों बल्कि नाशा के अग्रभाग की सीध में दृष्टि बड़ी शोभनीय लगती है। दांतों की अधोपंक्तियों के सामने ऊर्ध्व दांतों की पंक्तियाँ सुन्दर सौम्य कहलाती हैं।

❖

31. **सर्व अक्ष-व्यापार को, विराम योगी देत।**
धीरे-धीरे श्वास-ले, ध्यान-एक कर लेत॥

सभी इन्द्रियों की क्रिया को रोक कर योगी अपनी स्वाभाविक-श्वास की गति को ध्यान में रखता हुआ ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है।

❖

32. **नहीं दृष्टि हो चंचला, आसन-विजयी पूर्ण।**
भौतिक-साधन दूर सब, प्रकृति-साथ सम्पूर्ण॥

निश्चल (नाशाग्र) दृष्टि के साथ आसन की दृढ़ता रखते हुए योगी भौतिक-साधनों (पंखा, ए सी, कूलर आदि) से दूर रहते हुए प्रकृति के सौम्य व शांत-वातावरण में ध्यान सम्पन्न करता है।

ध्येय व साधन द्रव्य

33. **शुद्ध-आत्मा ध्येय है, परमेष्ठी, नव-देव।**
निमित्त-द्रव्य व तत्त्व भी, अस्तिकाय सदैव॥

शुद्ध-आत्मा ध्यान करने योग्य ध्येय-द्रव्य कहलाता है परमेष्ठी, नव-देवता, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व और पञ्चास्तिकाय ये ध्यान की एकाग्रता में सहायक रूप सदैव चिन्तन करने योग्य निमित्त द्रव्य कहलाते हैं।

ध्यान हेतु क्षेत्र

34. ध्यान-क्षेत्र एकान्त हो, बाधाओं से दूर।
जंगल, गृह, मंदिर रहे, प्रसन्नता से पूर॥

ध्यान का क्षेत्र एकान्त और बाधक वातावरण से रहित होना चाहिए। ऐसे ध्यान का वातावरण जंगल में, खाली घर अथवा जिनमंदिर (जिनालय) में प्राप्त होता है। ऐसे उत्तम-वातावरण में प्रसन्नता पूर्वक ध्यान सम्पन्न होता है।

ध्यान हेतु काल

35. सुबह, मध्य व शाम में, नित्य करें शुभ-ध्यान।
योग सुषुम्ना-स्वर चले, परम-शांति हो जान॥

प्रातः सूर्योदय के निकट, मध्याह्न में बारह बजे के निकट और सायंकाल में सूर्यास्त के करीब सुषुम्णा-नाड़ी-योग के काल में जब सूर्य व चन्द्र स्वर युगपत् सहज रूप से चलते हैं उस समय प्रतिदिन शुभ-ध्यान करने से परमशान्ति की प्राप्ति होती है।

❖

36. छह, चार व दोय घड़ी, सामायिक में ध्यान।
उत्तम, मध्यम व जघन, काल तीन पहचान॥

सामायिक रूपी ध्यान में छह घड़ी (दो घण्टा चौबीस मिनिट) उत्कृष्टकाल, चार घड़ी (एक घण्टा छत्तीस मिनिट) मध्यमकाल, दो घड़ी (अड़तालीस मिनिट) जघन्य काल जानना चाहिए। इन कालों में शुभ-ध्यान करने से मन अधिकाधिक एकाग्र होता चला जाता है।

ध्यान हेतु भाव

37. सब जीवों पर साम्य हो, संयम भावन नेक।
आर्त्त, रौद्र का त्याग हो, समता पूर्ण विवेक॥

जगत् के सर्व प्राणियों पर भेद-भाव या राग-द्वेष के बिना समता रहना, इन्द्रियों को पापों से बचाकर प्राणियों की रक्षा में सावधानी रखना, शुभ-भावनाओं को भाना और आर्त्त व रौद्र ध्यानों का त्याग करना यह विवेकी के सामायिक भाव रूपी सम्यक् ध्यान कहलाता है।

समता

38. ना राजा ना रंक लख, ना ही सौम्य कुरूप।
आतम इनसे भिन्न है, यति लखता सम रूप॥

मेरी दृष्टि में न कोई राजा है, न कोई गरीब है, न कोई सुन्दर है और न ही कोई कुरूप है बल्कि आत्मा इन सभी बाहरी अवस्थाओं से विलग, समान रूप से अनन्त-शक्तिवाला होता है; ऐसा वह ध्यान हेतु यत्न-पुरुषार्थ करने वाला योगी विचार करता है।

संयम

39. इन्द्रिय-विषयों में जहाँ, भोग-रुचि का त्याग।
त्रस, थावर का घात तज, तजें जगत् से राग॥

पंचेन्द्रियों के विषयों में जिस योगी के भोग करने की रुचि नहीं होती और लट, सीप आदि द्विन्द्रिय; शंख, चींटी, तिरूला, बिच्छु आदि त्रीन्द्रिय; मच्छर, मक्खी, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय; तथा चूहा, मेंढक, मछली, गाय मनुष्यादि पंचेन्द्रिय ऐसे त्रस जीवों एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की हिंसा को छोड़कर; संसार से राग-द्वेष व मोह का जो त्याग कर देता है वह ध्यान करने योग्य सावधानी-संयमी कहा जाता है।

सद्भावनाओं के प्रकार

40. जहाँ भावना धर्म की, पच्चिस सोलह जान।
बारह, सप्त व चार भी, त्रि, द्वि, इक शुभ मान॥

जहाँ धर्म सम्बन्धी पच्चीस, सोलह, बारह, सात, चार, तीन, दो और एक इस तरह सत्तर प्रकार की सद्-भावनाएँ भावित की जाती हैं वहाँ उन्हें शुभभावना रूप मानना चाहिए।

❖

41. पांच-व्रतों की भावना, पांच-पांच पहचान।
दर्शनविशुद्धि आदि भी, सोलह-भावन मान॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप व्रतों की रक्षा के लिए पांच-पांच-भावनाएँ जानो तथा दर्शन-विशुद्धि आदिक सोलह-भावनाएँ मानो।

❖

42. अनित्य आदिक-भावना, बारह-भावन जान।
शास्त्राभ्यास जिन-स्तुति, आदिक सात सु-मान॥

अनित्य आदिक अनुप्रेक्षाओं को बारह-भावना रूप जानो तथा शास्त्राभ्यास और जिनेन्द्र-स्तुति आदि के लिए सात-भावनाएँ मानो।

❖

43. मैत्री, प्रमोद-भावना, करुणा भी शुभ रूप।
मध्यस्थी-चौथी रही, मोक्षमार्ग-अनुरूप॥

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ इन चार-भावनाओं के लिए मोक्षमार्ग के अनुरूप शुभ-भावनाएँ जानना चाहिए।

❖

44. समदर्शन वा ज्ञान, व्रत, रत्नत्रय हैं जान।
संवेगरु वैराग्य भी, शुभ-भावन पहचान॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनको रत्नत्रय रूप तीन-भावनाएँ जानो तथा संवेग और वैराग्य इन दोनों को शुभभावना रूप मानो।

❖

45. आत्म-तत्त्व की भावना, एक-भावना नेक।
शिवसुख की ये भावना, करे आत्म-अभिषेक॥

अपनी आत्म-तत्त्व की भावना, एक-भावना बड़ी नेक-सुन्दर रूप शिव (मोक्ष) सुख देने वाली भावना; अपनी आत्मा का अभिषेक कर, अपनी आत्मा के अष्ट-कर्मों को धोकर, निर्मल-अवस्था को प्राप्त कराने वाली भावना कहलाती है।

आर्त्तध्यान का स्वरूप

46. अर्त्तितभाव ही आर्त्त है, जिसका दुःख है नाम।
अशुभ-बंध, हो दुर्गति, बिगड़ें धर्म सु-काम॥

अर्ति अर्थात् दुःख और ऐसे इष्ट-वियोग, अनिष्ट-संयोग, पीड़ा-चिंतवन और निदान नामक दुःख रूप ध्यानों को आर्त्तध्यान नाम से कहा जाता है। ऐसे आर्त्तध्यान को करने से धर्म के अच्छे कार्य बिगड़ जाते हैं और अशुभ-कर्मों का बंध होता है तथा आत्मा तिर्यंच आदि दुर्गतियों को प्राप्त करती है।

इष्टवियोग

47. जहाँ नष्ट हों इष्ट वे, पदार्थ या हों दूर।
कहाँ मिलेंगे, खेद यह, इष्ट-वियोगी पूर॥

जहाँ जब मन-पसंद पदार्थों या व्यक्तियों के दूर हो जाने पर, चोरी हो जाने पर या उन पदार्थों के समाप्त आदि हो जाने के सम्बन्ध में उनके कहाँ, कब मिलने रूप संयोग के लिए जो त्रिकाल-सम्बन्धी खेद, चिंता या विकलता होती है वहाँ तब इष्ट-वियोग नामक आर्त्तध्यान कहा जाता है।

अनिष्टसंयोग

48. जहाँ अनिष्ट-पदार्थ के, हट जाने का भाव।
अनिष्ट-संयोगी बने, मिलता नहीं स्वभाव॥

जहाँ जब अपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के मिलने पर उनके या उनसे दूर हो जाने के सम्बन्ध में जो चिन्तवन उत्पन्न होता है उसे अपने वास्तविक स्वभाव से दूर रखने वाला अनिष्ट-संयोग नामक आर्त्तध्यान कहते हैं।

पीड़ा-चिन्तवन

49. तन की पीड़ा होय जब, रोगादिक हों मान।
रोग-भूख आदिक मिटें, पीड़ा-चिन्तन ध्यान॥

संसारी जीवों के मन में रोगादिक से शारीरिक कष्टों के सम्बन्ध में तथा भूख-प्यास आदि की वेदना को शमन करने के सम्बन्ध में जो विचार चलते हैं उसे पीड़ा-चिन्तवन नामक ध्यान कहा गया है।

निदान

50. इन्द्रादिक की सम्पदा, इन्द्रिय के वे भोग।
आगे हमको प्राप्त हों, यही निदान प्रयोग॥

अपने सांसारिक जीवन में इन्द्र, चक्रवर्ती, राजा और श्रेष्ठी आदि के सांसारिक वैभव या कहिए कि पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की आगे मुझे प्राप्ति हो ऐसा विचार करना निदान नामक आर्त्तध्यान कहलाता है।

आर्त्तध्यान के गुणस्थान

51. प्रथम पाँच-गुणथान तक, सभी आर्त्त हों ध्यान।
छठवे उस गुणथान में, बिन निदान त्रय मान॥

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ऐसे पांच गुणस्थानों तक सभी चारों आर्त्तध्यान यथासंभव होते रहते हैं लेकिन प्रमत्त-संयत नामक मुनियों के छठे गुणस्थान में निदान को छोड़ कर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और पीड़ाचिंतन ऐसे तीन आर्त्तध्यान यथा समय होना संभव है।

रौद्र-ध्यान का स्वरूप

52. **रुद्र-भाव ही रौद्र है, क्रूर उठें परिणाम।**
जिसको भी तजना कहूँ, तभी होय शुभ-ध्यान॥

रुद्र अर्थात् क्रूर-आशयरूप (हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद और परिग्रहानंद रूप) जो रौद्र-ध्यानात्मक परिणाम उत्पन्न होते हैं उनको छोड़ देना चाहिए तभी शुभ-ध्यान की उपलब्धि होती है।

हिंसानंद

53. **जहाँ जीव का घात हो, ऐसा कार्य सहर्ष।**
करना हिंसानंद है, जीवन ना आदर्श॥

जहाँ त्रस और स्थावर जीवों का घात होता है ऐसे कार्यों में हर्षित होना या अच्छा मानना हिंसानंद नामक रौद्रध्यान कहलाता है। ऐसे हिंसक (प्राणी वध, आरम्भादिक) कार्यों के करने वाले जीवों को लोग सदाचारी नहीं मानते।

मृषानंद

54. **झूठ-वचन जो पाप हैं, उनका जहाँ प्रयोग।**
मृषानंद वह ध्यान है, शुद्ध न हो उपयोग॥

जो असत्य-वचन पापरूप या हिंसा के कारण होते हैं उन्हें बोलना, बुलवाना आदि मृषानंद-ध्यान कहलाता है। ऐसा कार्य करने से अपनी आत्मा का उपयोग अशुद्ध या अशुभ रूप होता है।

चौर्यानन्द

55. पर-पदार्थ का हो हरण, छल-कपटी-मन होय।
चौर्यानन्दी-ध्यान है, दुर्गति में गम-जोय॥

दूसरों के धनादिक-हरण करने से मन छल व कपट वाला हो जाने से चौर्यानन्दी-ध्यान कहा जाता है, जो दुर्गतियों में पहुँचाकर बड़ा दुःखदायी होता है।

परिग्रहानन्द

56. इच्छाओं का जाल जो, बुने संग का भार।
परिग्रहानंदी बने, नारक-दुख्ख-मझार॥

जो आत्मा सांसारिक-भोगों की इच्छाओं का जाल फैलाकर परिग्रह का भार बढ़ाकर उसमें हर्ष मनाता है। वह मोही परिग्रहानन्द-रौद्र-ध्यानी बन नरक-आयु का आश्रव कर नरकों के बीच उत्पन्न होकर महादुःखों को पाता है।

रौद्रध्यान के गुणस्थान

57. प्रथम पाँच-गुणथान तक, सभी रौद्र हों ध्यान।
समकित, अणुव्रत हों जहाँ, तीव्र-रौद्र ना जान॥

प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान तक सभी रौद्र-ध्यान यथासंभव होते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन और अणुव्रतों के साथ प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य रूप चार गुणों की सम्पन्नता तथा स्थूल रूप से पांच पापों अथवा अन्याय, अनीति का त्याग होने से वे रौद्र-ध्यान तीव्र रूप में नहीं होते बल्कि अन्याय, अनीति को पराजित

करने हेतु किये जाते हैं। [जैसे- राम ने रावण की अन्याय, अनीति का खण्डन करने युद्ध किया था।]

धर्मध्यान का स्वरूप

58. आर्त्त, रौद्र को त्याग कर, करें धर्म-मय ध्यान।
राग-द्वेष वा पाप बिन, सामायिक पहचान॥

आर्त्त और रौद्र-ध्यानों को छोड़कर धर्मध्यान करना चाहिए। जिस धर्मध्यान में जब राग-द्वेष और पापों से रहित अवस्था होती है तब ध्यान की एक उच्च-अवस्था सामायिक की उपलब्धि होती है, ऐसा जानो।

❖

59. सदा धर्म-मय भाव हो, आवश्यक में लीन।
धर्म-ध्यान तब साथ हो, वही भव्य स्वाधीन॥

मुनियों से संबंधित सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग रूप षट् आवश्यकों में तथा श्रावकों से सम्बन्धित वीतरागदेव-पूजन, निर्ग्रन्थगुरु-उपासना, चार-अनुयोगों का स्वाध्याय, प्राणी-रक्षा रूप संयम, उपवास और रसादि के त्याग रूप तप में एवं आहार, औषध, उपकरण और आवास रूप चार तरह के दान रूप षट् कर्मों में जो धर्ममय शुभ-भाव होता है उसे धर्मध्यान कहते हैं। ऐसा धर्मध्यान करने से भव्यात्मा को स्वाधीन आनंद रूप अवस्था की प्राप्ति होती है।

धर्मध्यान के भेद

60. आज्ञा-विचय, अपाय भी, अरु विपाक, संस्थान।
चार धर्म ये ध्यान हैं, जग में शुभ हैं ध्यान॥

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चारों धर्म-ध्यान जगत् में शुभ-ध्यान माने गये हैं।

आज्ञाविचय

61. वीतराग की देशना, द्रव्य, तत्त्व-उपदेश।
रत्नत्रय-मय मोक्षमग, गहें मान आदेश॥

वीतराग (तीर्थंकर या अरिहंत भगवान) की वाणी से प्राप्त छहद्रव्य, सप्ततत्त्व और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय-मय मोक्षमार्ग का जो उपदेश है उसे हम आदेश समान मानकर श्रद्धा से आत्म-कल्याण हेतु स्वीकार करें, यही चिंतवन की विचारधारा आज्ञाविचय-धर्मध्यान कही जाती है।

अपायविचय

62. दुख-मय यह संसार है, कुदर्श पाँचों-पाप।
छोड़ें यही अपाय है, ध्यानी दें जिन-जाप॥

रोग, भूख, प्यास, ठण्डी, गर्मी आदिक रूप शारीरिक दुःख कटु व तिरस्कार आदि वचन रूप वाचनिक दुःख एवं चिंता एवं भोगाकांक्षादि रूप मानसिक दुःख से परिपूर्ण इस संसार को एवं ऐसे दुखदायी संसार के कारण स्वरूप एकान्त, विपरीत, वैनयिक, संशय और अज्ञान रूप पंच-मिथ्यात्वों को तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पंच-पापों से यह संसारी आत्मा कब मुक्त होगी ऐसा चिंतवन करना अपायविचय-धर्मध्यान कहलाता है। इस कार्य की सफलता हेतु जिनेन्द्र-प्रभु के नाम की जाप देना सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए।

विपाकविचय

**63. कर्मों का जो पाक-फल, भव-सुख, दुख दे जान।
लख-चौरासी योनि में, चउगति-भ्रमत अजान॥**

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन अष्ट-कर्मों का क्रमशः ज्ञान में बाधक बनना, दर्शन न होने देना, संसार से मोहित (आकृष्ट) करना, सुख-दुःख का अनुभव करना, एक-गति में रोके रहना, सुन्दर, असुन्दर शरीर प्राप्त कराना, उच्च-नीच कुल में पैदा कराना और दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा शक्ति में बाधा उत्पन्न कराने रूप फल इस चतुर्गति रूप संसार में यह अज्ञानी आत्मा भोगता हुआ चौरासीलाख योनि रूप चतुर्गति-संसार में अनंतकाल तक परिभ्रमण करता रहता है इत्यादि रूप-चिंतवन करना विपाकविचय धर्म-ध्यान कहलाता है।

संस्थानविचय

**64. तीन-लोक का सब गणित, शुद्ध-द्रव्य उपयोग।
मुनि संस्थान-विचय करें, ध्यान रहा सद्योग॥**

तीनों-लोकों की रचना का सम्पूर्ण-गणित या राजू एवं योजन आदि के रूप में लोक के प्रमाण तथा द्रव्यों के शुद्धस्वरूप और आत्मा के शुद्धोपयोग की प्राप्ति में निमित्त पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ व रूपातीत ध्यानों का मुनियों के द्वारा चिंतवन किया जाना संस्थानविचय-धर्मध्यान रूप उत्तम-योग कहलाता है।

संस्थानविचय के भेद

65. पदस्थ अरु पिंडस्थ वा, हैं रूपस्थ सु-ध्यान।
रूपातीत महान ये, शिव-सुख दें कल्याण॥

संस्थान-विचय के भेदरूप पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत-ध्यान ये महान हैं और ये शुक्लध्यान के साधन बनकर मोक्ष-सुख प्रदान कर आत्मा का कल्याण करते हैं।

पदस्थध्यान

66. मंत्र-वाक्य का ध्यान हो, वीतराग शुभ रूप।
पदस्थ जानो ध्यान वह, हो एकाग्र स्वरूप॥

वीतराग शुभ रूप णमोकार-मंत्र आदि वाक्यों या पदों का ध्यान पदस्थ-ध्यान कहलाता है जिस ध्यान से एकाग्र स्वरूप की प्राप्ति होती है।

❖

67. णमोकार शुभ-मंत्र है, सब मंत्रों का राज।
शीघ्र अशुभ-विधि-नाशकर, सिद्ध बनावे काज॥

सर्व-वीतराग मंत्रों में प्रधान राजा-सदृश णमोकार-मंत्र माना गया है जो मंत्र सर्व पाप-कर्मों का शीघ्र ही क्षय करके परमेष्ठी रूप सिद्ध-पद को प्रदान करा देता है।

❖

68 ओम् महा यह मंत्र है, परमेष्ठी का बीज।
द्वादशांग-सागर कहें, भव-सुख, शिव की चीज॥

'ओम्' (ॐ) भी यह महामंत्र पंच-परमेष्ठियों के सम्पूर्ण-अर्थ को धारण करने वाला बीज के समान है और द्वादशांग रूप शास्त्र के सागर को धारण करने वाला होता हुआ संसार में जीवों को सुखी करते हुए मोक्ष-सुख तक पहुँचानेवाला है।

❖

69. ह्रीं अक्षर जिन बुद्ध वा, हरि ब्रह्मा शिव रूप।
केवलज्ञानी, सार्वमय, जगत्-वंद्य सुख रूप॥

'ह्रीं' यह अक्षर जिनेन्द्र स्वरूप वीतराग बुद्ध, हरि, ब्रह्मात्मा और शिव अर्थात् मोक्ष स्वरूप, केवलज्ञानी, सर्वज्ञ और जगत् से पूज्य होते हुए सुख-शान्ति का प्रदाता माना गया है।

❖

70. अर्हं-अक्षर श्रेष्ठ है, अर्हत्-पद का नाम।
पूज्य रहे जो लोक में, ध्यावें, बनते काम॥

'अर्हं' यह अक्षर सर्वश्रेष्ठ अर्हंत्-पद का वाचक है जो अरहंत पूर्णलोक में पूज्य माने गये हैं ऐसे अरिहंतों का ध्यान करने से पाप-कर्मों का क्षय होता है और पुण्य बढ़ने से सभी शुभ-कार्यों की सिद्धि होती है।

❖

71. ह्रॉं रहा अरिहंत का, वाचक श्रेष्ठ महान।
घातिकर्म का नाश कर, जीवन-मुक्त सुजान॥

'ह्रॉं' यह अक्षर भी अरिहंत-परमेष्ठी का वाचक श्रेष्ठ व महान है जो घातिया-कर्मों का नाश करने वाले और पुनर्जन्म न लेने वाले, जीवन-मुक्त ऐसे अरिहंतों का ज्ञान करवाता है; ऐसा ध्यान करो।

❖

72. ह्रीं रहा श्री सिद्ध का, वाचक श्रेष्ठ महान।
अष्ट-कर्म का नाशकर, गुण अनन्त की खान॥

अष्ट-कर्मों का क्षय कर जो अनन्त-गुणों के भण्डार बने ऐसे सिद्ध-भगवन्तों का वाचक 'ह्रीं' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

❖

73. ह्रूँ रहा आचार्य का, वाचक श्रेष्ठ महान।
पंचाचार-प्रधान हैं, करें सर्व-कल्याण॥

पंचाचारों का जो मुख्यतः पालन करते हैं और सभी भव्यों के लिए रत्नत्रय-प्रदान करते हुए उनका कल्याण करते हैं, ऐसे आचार्य-परमेष्ठी का वाचक 'ह्रूँ' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

❖

74. ह्रौं श्रेष्ठ वाचक सुधी, उपाध्याय का नाम।
द्वादशाङ्ग के ज्ञान से, मुनि पाते शिवधाम॥

शिव अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति के पथ पर चलने वाले द्वादशांग के ज्ञानी-सुधी-उपाध्याय-परमेष्ठी रूप मुनिवर का वाचक 'ह्रौं' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

❖

75. ह्रः अक्षर यह साधु का, वाचक श्रेष्ठ महान।
रत्नत्रय से आत्म में, लीन करें निज-ध्यान॥

रत्नत्रय का पालन कर आत्मा में लीन होकर निज का ध्यान करने वाले निर्ग्रन्थ साधु-परमेष्ठी का वाचक 'ह्ः' अक्षर श्रेष्ठ व महान है।

❖

76. अग्र ओम् पीछे जहाँ, नमः लगावें साथ।
उपरिम अक्षर-जाप दें, बनें लोक में नाथ॥

उपरिम अक्षर 'ह्रीं' आदिक के पहले 'ओम्' (ॐ) अक्षर लगाकर तथा उन 'ह्रीं' आदिक के बाद 'नमः' लगाकर जाप-जपने से कर्मों का क्षयकर आत्मा लोक के नाथ अर्थात् सिद्धों के पद को परम्परा से प्राप्त कर लेता है।

पिण्डस्थध्यान

77. निजात्म के सम्बन्ध से, सद्गुण-गण का ध्यान।
कहा ध्यान पिंडस्थ वह, जिसमें निज-कल्याण॥

अपनी-आत्मा में लीन होकर अपने ही गुणों का ध्यान करना पिण्डस्थ-ध्यान कहलाता है जिस ध्यान में ही अपनी-आत्मा के कल्याण का रहस्य छुपा होता है।

❖

78. दर्शन, सुख, चारित्र-मय, दश-धर्मों से पूर्ण।
शक्ति अनन्त सुकोष निज, गुण अनन्त संपूर्ण।

दर्शन, सुख, चारित्रमयी अपनी-आत्मा उत्तम-क्षमा आदिक दश-धर्मों से परिपूर्ण है तथा अनन्त-शक्तियों का खजाना है और अनन्त-गुणों का धाम है ऐसा चिंतवन करना पिण्डस्थ-ध्यान कहलाता है।

पंच-धारणाएँ

79. पंच तरह की धारणा, करता ध्यानी होय।
पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, और तत्त्व संजोय॥

पृथ्वीधारणा, अग्निधारणा, वायुधारणा, जलधारणा और तत्त्वधारणा ऐसी पंच-धारणाएँ सम्यक्ध्यान के लिए सुयोग्य मानी गईं हैं; इनका विधिवत् अभ्यास करने वाला योगी सम्यक्-ध्यानी कहलाता है।

पृथ्वीधारणा

80. मध्य-लोक है क्षीर-सम, सागर शान्त स्वरूप।
जम्बूद्वीप सहस्रदल, इक-लख योजन रूप॥

अत्यन्त-शान्ति स्वरूप क्षीरसागर-समान मध्यलोक में एक-हजार पाँखुड़ी-सदृश एक-लाख योजन वाला जम्बूद्वीप स्थित है।

❖

81. वहाँ कर्णिका-मध्य में, श्वेतासन-शुभ रूप।
जहाँ विराजित आतमा, बन निर्ग्रन्थ स्वरूप॥

जम्बूद्वीप के बीचोंबीच निन्यानवे-हजार चालीस-योजन ऊँची कर्णिका के मध्य शुभ रूप धवल-आसन पर अपनी-आत्मा निर्ग्रन्थ रूप में विराजमान है ऐसा चिंतवन करना ''पृथ्वीधारणा'' कहलाती है।

अग्निधारणा

82. निज-नाभि में ऊर्ध्वमुख, स्वर्णिम-दल शुभ-मान।
सोलह-पांखुड़ि स्वर बसें, मध्य-बसे र्ह्रं जान॥

अपनी-नाभि से ऊर्ध्वमुखी स्वर्णमयी एक कमल उत्पन्न हुआ है जिस कमल की सोलह-पांखुड़ियों पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे सोलह-स्वर क्रमशः विराजित हैं और कर्णिका के ऊपर बीचों-बीच 'र्ह्रीं' अक्षर विराजित है ऐसा जानो।

❖

83. अधो-मुखी हिय-मध्य में, कमल विराजित सोह।
अष्ट-पाँखुड़ी कर्म की, दहे ध्यान र्ह्रीं होह॥

अपने हृदय के मध्य में अधोमुखी एक कमल शोभित है जिस कमल की अष्ट-पाँखुड़ियों पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय नामक अष्ट-कर्म क्रमशः चिपके हुए हैं तथा बीचों-बीच कर्णिका पर विराजित 'र्ह्रीं' अक्षर अपने अंदर स्थित 'र्' अक्षर से और नाभि-कमल के मध्यवर्ती 'र्ह्रीं' के अंदर स्थित 'र्' अक्षर का संयोग एवं उन दोनों 'र्' का पारस्परिक घर्षण शुक्ल-ध्यानाग्नि प्रकट कर देता है और हम जैसे-जैसे एक-आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय की गहराई के चिन्तन में डूबते चले जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा ध्यान उत्तम से उत्तमता की ओर बढ़ता चला जाता है और ध्यान-रूपी अग्नि हृदय-स्थित कमल की पाँखुड़ियों पर चिपके (बंधे) हुए कर्मों को शीघ्र ही अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में जला कर नष्ट कर देती है। इस तरह विचार करना "अग्निधारण" कहलाती है।

❖

84. आतम में प्रकटें जहाँ, गुण-अनन्त-अभिराम।
सिद्ध बने परमात्मा, सिद्ध हुए सब-काम॥

अष्ट-कर्म नष्ट होते ही आत्मा केवलज्ञानी, शुद्ध, बुद्ध परमवीतरागी सिद्ध-परमात्मा बन जग में शोभा पाता है और उनकी आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति आदि अनन्त शुभ-गुण प्रकट हो जाते हैं तथा वे सिद्ध-परमेष्ठी सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं।

❖

85. घृत जैसे महके; पुनः, नहीं दुग्ध में आय।
भव में न अवतार ले, शिव में आतम भाय॥

दुग्ध से प्रकट हुआ घृत जैसे पुनः दुग्ध रूप अवस्था में लौटकर नहीं जाता हुआ अपनी सुगन्ध को चहुँ ओर फैलाता है वैसे ही संसार-समुद्र से पार हुए सिद्ध-परमात्मा अनंतकाल में कभी भी मोक्षपद या सिद्ध-लोक से लौट कर संसार में पुनर्जन्म नहीं धारण करते, बल्कि सदा वे लोक-शिखर पर ही सुशोभित होते हैं।

❖

86. सकल-ज्ञेय-ज्ञायक बने, झलकें सभी पदार्थ।
दर्पण-वत् आदर्श हैं, गुण-अनन्त-परमार्थ॥

व्यवहार-दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ तथा निश्चय-दृष्टि से दर्पणवत् जिनकी आत्मा में विश्व के सभी पदार्थ युगपत् झलकने लग जाते हैं और वे आत्मज्ञ-सिद्ध-परमात्मा अपने अनन्त-गुणों के आनंद में लीन रहते हैं।

वायु और जलधारणा

87. कर्मराख को तीव्र वह, मारुत करती साफ।
मेघों के उस नीर से, थल भी धुलता आप॥

ध्यानाग्नि से भष्म हुए अष्ट-कर्मों की राख को तीव्र तूफानी गतिमान वायु उड़ाकर दूर कर देती है और मूसलाधार वर्षात् के द्वारा मेघों का जल राख के बने दाग को धोकर साफ कर डालता है ऐसा शुभ-चिन्तवन करना क्रमश: ''वायु'' और ''जलधारणा'' कहलाती है।

तत्त्वधारणा

88. यह शुद्धात्म अजीव से, भिन्न-सिद्ध है जीव।
परम-तत्त्व दर्शन तथा, ज्ञान सहित मम-जीव॥

यह शुद्धात्मा शरीर, वस्त्र, अलंकार आदिक से भिन्न दर्शन तथा ज्ञान सहित परमतत्त्व स्वरूप है ऐसा चिन्तवन करना ''तत्त्वधारणा'' कहलाती है।

रूपस्थध्यान

89. आत्म-सर्व-चिद्रूप है, ज्ञान-मयी सु-विचार।
ध्यान रहा रूपस्थ यह, यतिओं को स्वीकार॥

निज-आत्मा सम्पूर्ण चैतन्य-ज्ञान-मय है ऐसा विचार करना रूपस्थ-ध्यान मुनियों द्वारा मान्य कहा गया है।

❖

90. अनन्त-ज्ञान भण्डार-मय, आतम-गुण चिद्रूप।
कर्म-मेघ हटते जहाँ, बने केवली रूप॥

अनन्त ज्ञानादिक का खजाना रूप आत्मा चैतन्य-गुणों के उदय और कर्म रूपी मेघ-पटलों के हटने पर, कैवल्य-अवस्था का स्वामी बन जगत् में भासित-शोभित होता है। ऐसा विचार करना ''रूपस्थ-ध्यान'' कहलाता है।

रूपातीतध्यान

91. निष्कलंक-त्रयकाल-निज, शुद्ध-निरंजन एक।
चिन्तन रूपातीत है, ध्यान करें मुनि नेक॥

कर्म-कलंक से रहित त्रिकालों में अपनी आत्मा शुद्ध-निरंजन अकेली होती है ऐसा चिन्तवन कर मुनिराज श्रेष्ठ रूपातीत-ध्यान करते हैं।

❖

92. चिदानन्द-मय पूर्ण यह, शुद्धातम गुण-खान।
अमूर्त-नित्य-परमात्मा, ध्यावें सिद्ध-समान॥

अपनी शुद्धात्मा चैतन्य के आनंदमयी गुणों की खजाना है। अमूर्त शाश्वत-परमात्मा सिद्धों के समान है। ऐसा मुनि लोग ध्यान करते हैं, इसी का विचार करना चाहिए।

धर्मध्यान के स्वामी

93. चौथे उस गुणथान से, सप्तम तक ये ध्यान।
ध्यान; विचय संस्थान यह, मुनिवर के पहचान॥

असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ-गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त-संयत नामक सातवें-गुणस्थान तक धर्मध्यान करने की योग्यता मानी गई है, लेकिन संस्थान-विचय धर्मध्यान केवल निर्ग्रंथ-दिगम्बर-आत्मध्यानी मुनियों को ही होना संभव है; ऐसा जानकर उसकी प्राप्ति का पूर्ण पुरुषार्थ करो।

शुक्ल-ध्यान का स्वरूप

पृथक्त्ववितर्कवीचार

94. अर्थ, व्यंजन, योग का, परिवर्तन जब होय।
श्रुत में ऊहापोह हो, शुक्ल-ध्यान-अथ होय॥

पृथक्त्व अर्थात् भेद रूप द्रव्य, वितर्क अर्थात् श्रुत (ज्ञान) के साथ रहना, और वीचार अर्थात् अर्थ (पदार्थ), व्यंजन (पर्याय) एवं योग (मन-वचन-काय) ऐसा इस प्रथम शुक्ल ध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है। जब मुनिवर जीवाजीवादिक अनेक भेदों सहित द्रव्यों को मन, वचन और काय इन तीनों योगों के द्वारा ध्याते हैं तब पृथक्त्व होता है। मुनिवर का श्रुत-ज्ञान में (अंग सहित नवम पूर्व आदिक ज्ञान में) चिंतवन-मंथन चलता है तब वितर्क कहलाता है। इसी तरह एक अर्थ (पदार्थ) को छोड़कर भिन्न अर्थ का ध्यान करना और एक व्यंजन (पर्याय) या द्रव्य की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ध्यान करना तथाहि मन से चिन्तवन करके वचन से चिन्तवन करना; पुनः काययोग से चिन्तवन करना; इस तरह का परिवर्तन (संक्रमण) यह वीचार कहलाता है। इन अर्थ, व्यंजन और योगों के परिवर्तन से यह ध्यान तीन प्रकार रूप होता है। ऐसे ज्ञान (श्रुत) के विषय में चिंतवन-मंथन करते-करते योगी एकाग्रता से शुक्ल-ध्यान को ध्याते हैं।

एकत्ववितर्क अविचार

95. एक-योग में थिर रहे, श्रुत का मन्थन होय।
शुक्ल-ध्यान फिर दूसरा, केवलज्ञानी होय॥

मन, वचन और काय में से किसी एक-योग के द्वारा मुनिवर जब षड् द्रव्यों में से किसी एक-द्रव्य का, नव-पदार्थों में से एक-पदार्थ का और व्यंजन या अर्थ-पर्यायों में से किसी एक-पर्याय का श्रुतज्ञान के चिंतन-मंथन के साथ जो ध्यान करते हैं उसे एकत्व-वितर्क अवीचार ध्यान कहा जाता है। इस ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् बड़ी स्थिरता होती है। इस ध्यान की यह विशेषता है कि इस ध्यान के अन्तर्मुहूर्त्त काल में मुनिवर अपनी आत्मा में अनादिकाल से बंधे कर्म जो कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातियाँ कर्मों का क्षय (नाश) करके केवलज्ञान की प्राप्ति करके अरिहंत-भगवान के पद को प्राप्त कर लेते हैं।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती

96. काययोग बस जब रहे, ना प्रतिपाती होय।
केवलज्ञानी-आत्मा, परमातम-सम जोय॥

केवली-भगवान के जीवन के अंत में होने वाला परमात्मा की उत्कृष्ट-समता देने वाला ध्यान जिसमें काययोग की क्रिया भी सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्म-क्रिया-अप्रतिपाती (अप्रतिपाती अर्थात् निचली अवस्था में

लौटकर नहीं आने देने वाला) ध्यान कहलाता है। यह अवितर्क और अविचार है अर्थात् श्रुत के अवलम्बन से रहित है अतः अवितर्क है और इसमें अर्थ, व्यंजन तथा योगों का संक्रमण नहीं है अतः अविचार है।

व्युपरतक्रियानिवृत्ति

97. बने अयोगी आतमा, सर्व-निवृत्ति होय।
सर्वकर्म बिनसें तभी, क्षण में मुक्ति होय॥

सम्पूर्ण योगों या काययोग का भी निरोध हो जाने से जो अयोग-केवली-परमात्मा का ध्यान है वह **व्युपरतक्रियानिवृत्ति** या **अनिवृत्ति-निरुद्ध-योग** अथवा **समुच्छिन्न क्रिया** नामक शुक्लध्यान कहलाता है। यह ध्यान सभी ध्यानों में अन्तिम और उत्कृष्ट होने से अनुत्तर है, परिपूर्णतया स्वच्छ-उज्ज्वल होने शुक्ल है, यह मणि के दीप की शिखा के समान होने से पूर्णतया अविचल है। तथाहि तृतीयशुक्ल-ध्यान की भांति अवितर्क, अवीचार भी है। ऐसे उत्कृष्ट-ध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर आत्मा क्षणमात्र में मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेती है।

चौदहवें गुणस्थान का काल

98. गणधर के स्वर-पंच-लघु, उच्चारण में काल।
जितना, उतना है इसी, गुणस्थान का काल॥

गणधर-परमेष्ठी के लिए 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', 'लृ' इन पंच ह्रस्व-स्वरों के उच्चारण में जितना अल्पकाल (जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त) लगता है, उतना

ही इस चौदहवें-गुणस्थान का काल होता है जिसमें अयोग-केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

शुक्लध्यान के गुणस्थान

99. अष्टम-गुणस्थान से, प्रथम-शुक्ल हो ध्यान।
बारहवें-गुणथान में, होय दूसरा जान॥

अपूर्वकरण नामक आठवें-गुणस्थान से पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है। क्षीणकषाय नामक बारहवें-गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है।

❖

100. तेरहवें गुणथान में, तीजा-शुक्ल सु-ध्यान।
चौदह में चौथा-शुकल, फिर हो मोक्ष-महान॥

सयोग-केवली नामक तेरहवें-गुणस्थान में सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाती नामक तृतीय शुक्ल-ध्यान कहा जाता है और अयोग-केवली नामक चौदहवें -गुणस्थान में व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्ल-ध्यान कहा जाता है; इस अन्तिम शुक्ल-ध्यान के उपरान्त आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

अन्तिम मंगल

101. मुनिवर का जीवन सदा, ज्ञान, ध्यान में लीन।
आर्जव-मय उपयोग से, बनें स्वयं-स्वाधीन॥

मुनिवर का जीवन हमेशा ज्ञान, ध्यानादि तपों में लीन रहता है। आर्जव अर्थात् सरलता-मय भाव से वे निज-आत्मा में स्वाधीन-स्वाश्रित सुखी बने रहते हैं।

❖

102. सागर वह अध्यात्म का, जिनके अन्दर पूर।
रचित शुद्ध-निज-आत्म में, भव-वांछा से दूर॥

जिन मुनिवर के हृदय में अध्यात्म का सागर लबालब भरा रहता और वे मुनिवर सांसारिक-इच्छाओं से विलग रहते हुए अपनी शुद्धात्मा में लीन रहते हैं।

❖

103. सम्यक् -निज-उपयोग हो, शुभ अरु शुद्ध-महान।
ध्यान जगे वह शुक्ल जब, मिलता केवलज्ञान॥

समीचीन (सम्यग्दृष्टि) आत्मा के धार्मिक-क्रिया रूप शुभोपयोग के द्वारा मुनियों को प्राप्त होने वाले महान शुद्धोपयोग की जब प्राप्ति होती है और जब शुक्लध्यान उत्पन्न होता है तब उसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है।

❖

104. शतक -वर्ष नहिं चाहिए, अन्तर्मुहूर्त्त मात्र।
पूर्ण-लीन निश्चल जहाँ, मुनिवर मोक्ष सु-पात्र॥

संसार या कर्मों से मुक्ति पाने के लिए शताधिक आदि वर्षों का ही होना आवश्यक नहीं बल्कि अन्तर्मुहूर्त्त काल मात्र में ही मुनिवर अगर पूर्ण निश्चल-एकाग्र वृत्ति से अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं तो उन्हें सम्पूर्ण कर्मों से छुटकारा पाने रूप मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

❖

105. अष्टापद व सम्मेदगिरि, चम्पापुर, गिरनार।
पावापुर को ध्याय जो, शीघ्र करे भव-पार॥

भ. आदिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान अष्टापद-कैलाश पर्वत, भ. अजितनाथ आदि वर्तमान चौबीसी के बीस तीर्थंकरों एवं अनन्तानन्त मुनीश्वरों का मोक्षस्थान सम्मेदशिखर, भ. वासुपूज्य तीर्थंकर का मोक्षस्थान चम्पापुर (मन्दारगिरि), भ. नेमिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि) और अन्तिम तीर्थंकर भ. महावीर का मोक्षस्थान पावापुरी है उसका जो ध्यान करता है वह भव्यात्मा शीघ्र ही संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

❖

106. तीन-गुप्ति में लीन हो, मन-वच-तन को रोक।
करें ध्यान शिव-मोक्ष पा, जन्म, मृत्यु ना शोक॥

पंच-मिथ्यात्व, पंच-पाप एवं पंच-इन्द्रिय के विषयों की ओर से मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को रोककर तीन-गुप्तियों के द्वारा आत्मलीनता पूर्वक सम्यक्-ध्यान करने से जहाँ जन्म, मृत्यु और शोक नहीं ऐसा मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रशस्ति

107. सुप्रतिष्ठित-केवली, मोक्ष गये वह थान।
गोपगिरि पावनधरा, जग से पूज्य महान॥

ग्वालियर नगर के निकट जिस पर्वत से सुप्रतिष्ठित-केवली मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए ऐसा स्थान गोपगिरि (गोपाचल) जगत् में महान पूज्य और पावन-धरा रूप माना गया है।

❖

108. गोपाचल यह ग्वालियर, सिद्धांचल जहँ तीर्थ।
वृषभांचल, त्रिशलागिरि, नेमिगिरि भी तीर्थ॥

ग्वालियर नगर के जिस पवित्र पर्वत पर पूर्वदिशा की गुफाओं में जहाँ ब्यालीस फीट ऊँचे पार्श्वनाथ-भगवान विराजमान हैं ऐसा गोपाचल-तीर्थ स्थित है। दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच जहाँ भगवान महावीर के पंच कल्याणक के दृश्य व वीतराग-प्रतिमाएँ तथा त्रिशलामाता की सोलह स्वप्नों को दर्शाने वाली प्रतिमा बनी हुई है ऐसी त्रिशलागिरि नाम से प्रसिद्ध-स्थल है। पश्चिम-दिशा में जहाँ चौबीस फीट ऊँचे नमिनाथ-भगवान आदि की जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं और इसी तरह ईशान-दिशा में जहाँ नेमिनाथ भगवान आदि की प्रतिमाएँ बनाई गयी थीं ऐसा नेमिगिरि-तीर्थ स्थित है तथाहि उरवाही दरवाजे से प्रवेशकर ऊपर की ओर बढ़ते हुए पहाड़ के हृदय-सम बीचों-बीच चौरासी फीट ऊँचे भगवान आदिनाथ (वृषभदेव) की मूर्ति स्थित है।

❖

109. वर्धमान-मंदिर किला, सहित सु-पर्वत नाथ।
ग्वालियर में साठ जिन, मंदिर नमते माथ॥

सुप्रतिष्ठित केवली के सिद्धक्षेत्र गोपगिरि (गोपाचल) पर बने प्राचीन वर्धमान जिनालय के चारों ओर बने अर्वाचीन किले के परिसर में गुफाओं और मंदिरों में विराजमान व कुछ प्रकृति आदि से छिन्न-भिन्न; पाषाण से निर्मित पंद्रह हजार दिगम्बर-प्रतिमाओं के साथ पवित्रपर्वत और ग्वालियर शहर में स्थित स्वर्ण-मंदिर आदि साठ दिगम्बर जैन मंदिरों को हम वीतराग-भाव से सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं।

❖

110. वर्ष वीर-निर्वाण का, पच्चीस सौ चौतीस।
'सम्यक्-ध्यान शतक' लिखा, काव्य बनावे ईश॥

वीर-निर्वाण संवत् पच्चीस सौ चौंतीस के वर्षायोग में यह "सम्यक्-ध्यान-शतक" नामक काव्य (समीचीन-ध्यान-साधना हेतु) लिखा गया जो काव्य ध्यान-कर्ता को सिद्ध पद प्राप्त करावे।

❖

111. मंदिर नया-बजार में, पार्श्व-प्रभो हैं नेक।
वर्षायोग में काव्य यह, रचा सु-पूर्ण विवेक॥

ग्वालियर नगर के नया-बाजार स्थित मंदिर में विराजमान पार्श्वनाथ-भगवान की मनोज्ञ-प्रतिमा के चरणों में बैठकर पावन-वर्षायोग में आत्म-ध्यान की प्रसिद्धि के लिए ज्ञान-ध्यान रूप विवेक को धारण करते हुए यह काव्य रचित किया गया।

❖

112. पार्श्व-प्रभो की शरण वा, विद्या-गुरु आशीष।
पूर्ण हुआ यह काव्य शुभ, पढ़ें बनें शिव-ईश॥

भगवान पार्श्वनाथ की शरण एवं आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के आशीष से यह 'सम्यक्-ध्यान-शतक' शुभ-काव्य संपूर्ण हुआ, इस काव्य को सभी लोग (पुनः-पुनः) पढ़कर सिद्ध-पद को प्राप्त करें।

❖

113. इक सौ तेरा पद्य हैं, 'ध्यान शतक' में पूर्ण।
ध्यान करें निज-एक सो, तेरा है सम्पूर्ण॥

इस 'ध्यान-शतक' काव्य में एक सौ तेरह पद्य लिखे गये हैं और जो एक अर्थात् एकमात्र आत्मा ही तेरा है उस आत्मा का ध्यान करने से सम्पूर्णता की प्राप्ति या सम्पूर्ण-सुख रूप सिद्ध-पद की प्राप्ति हो जाती है।

*****

[यह सम्यक्-ध्यान-शतक का हिन्दी गद्यानुवाद; पद्यों के रचयिता द्वारा ही वीर-निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेतालीस में हुए पुरवा-जबलपुर (म.प्र.) के वर्षायोग में सम्पन्न हुआ]

ध्यान हेतु भावनाएँ

सद्भावनाओं के प्रकार :- पच्चीस, सोलह, बारह, सात, चार, तीन, दो और एक इस तरह कुल 70 प्रकार की भावनाएं होती हैं।

पच्चीस-भावनाएँ

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग इन पाँच व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ होती हैं।

अहिंसाव्रत की पाँच-भावनाएँ

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च। त.सू. 7/4

1. **वाङ्गुप्ति :** वचन की प्रवृत्ति को रोकना।
2. **मनोगुप्ति :** मन की प्रवृत्ति को रोकना।
3. **ईर्या समिति :** चलते समय आगे की चार हाथ जमीन देखकर जीव रक्षा करते हुए चलना।
4. **आदाननिक्षेपण समिति :** वस्तु को उठाते समय, रखते समय देख शोधकर जीव रक्षा का ध्यान रखना।
5. **आलोकितपान-भोजन :** सूर्य प्रकाश में भोजन-पान ग्रहण करते समय देख और शोधकर भोजन करना।

सत्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च। त.सू. 7/5

1. **क्रोध-प्रत्याख्यान** : क्रोध का त्याग करना।
2. **लोभ-प्रत्याख्यान** : लोभ का त्याग करना
3. **भीरुत्व-प्रत्याख्यान** : भय का त्याग करना।
4. **हास्य-प्रत्याख्यान** : हास्य (हँसना) का त्याग करना।
5. **अनुवीचि-भाषण** : शास्त्र की अनुकूल निर्दोष-वचन बोलना।

अचौर्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाःपञ्च।

त.सू. 7/6

1. **शून्यागारवास :** पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना।
2. **विमोचितावास :** दूसरों के द्वारा छोड़े गए निर्जन व एकान्त स्थान में निवास करना।
3. **परोपरोधाकरण :** जहाँ स्वयं ठहरे हों वहाँ दूसरों को ठहरने से नहीं रोकना।
4. **भैक्ष्यशुद्धि :** चरणानुयोग के शास्त्र-अनुसार भिक्षा (आहारचर्या) की शुद्धि रखना।
5. **सधर्माविंसवाद :** सहधर्मी भाइयों से 'यह तेरा है, यह मेरा है' इत्यादि कलह रूप नहीं करना।

ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ।त.सू. 7/7

1. **स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग :** स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग।
2. **तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग :** स्त्री के सुंदर अंगोपांगों को देखने का त्याग।
3. **पूर्वरतानुस्मरण त्याग :** पूर्व समय या अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग।
4. **वृष्येष्टरस त्याग :** कामवर्धक, गरिष्ठ रसों का त्याग।
5. **स्वशरीर संस्कार त्याग :** अपने शरीर पर कामोद्दीपक संस्कार रूप सुन्दरता बढ़ाने का त्याग करना।

परिग्रह त्याग व्रत की पाँच-भावनाएँ

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च । त.सू. 7/8

पाँचों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) इन्द्रियों के इष्ट-विषयों में राग नहीं करना और अनिष्ट-विषयों में द्वेष नहीं करना।

सोलह-भावनाएँ

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमितितीर्थ-करत्वस्य। त.सू. 6/24

1. **दर्शनविशुद्धि** : अरिहन्त-भगवान के द्वारा कहे गए वीतराग निर्ग्रन्थ रूप मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगादि सहित एवं पच्चीस मल दोष रहित रुचि या श्रद्धा का होना।
2. **विनयसम्पन्नता** : रत्नत्रय एवं रत्नत्रय के धारक आगम से चलने वाले साधुओं की अन्तरंग से आदर, सत्कार रूप विनय करना या नवदेवताओं की विनय करना।
3. **शील-व्रतेषु अनतिचार** : अहिंसा, सत्य आदि व्रतों का एवं व्रतों की रक्षा करने वाले शीलों का अतिचार रहित (निर्दोष) पालन करना।
4. **अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग** : निरन्तर सम्यग्ज्ञान में अपना उपयोग लगाना अर्थात् सदा सम्यग्ज्ञान के पठन-पाठन, लेखन आदि में संलग्न रहना।
5. **अभीक्ष्ण-संवेग** : पञ्च परिवर्तन रूप संसार के दुःखों से एवं दुःख प्राप्ति के कारणों से सदा भयभीत रहना, अथवा रत्नत्रय-जनित हर्ष का होना।
6. **शक्तितः त्याग** : निज शक्ति के अनुसार रस इत्यादिक का त्याग करना अथवा विधिपूर्वक दान देना।

7. **शक्तितः तप :** अपनी शक्ति के अनुसार जैन मार्गानुकूल तपस्या करना।

8. **साधु-समाधि :** तपस्वी मुनियों के तप में आने वाली विघ्न-बाधाओं को दूर कर उनके संयम की रक्षा करना।

9. **वैयावृत्यकरण :** गुणवान सच्चे साधुजनों की, हाथ, पैर इत्यादिक अंग दबाकर, साथ में विहार कर अथवा आहार, औषध, उपकरण और आवास आदि का दान देकर उनकी सेवा करना।

10. **अर्हद्-भक्ति :** विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक अरिहन्त भगवान का गुणगान करना।

11. **आचार्य-भक्ति :** विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक आचार्य परमेष्ठी का गुणगान करना।

12. **बहुश्रुत-भक्ति :** विशुद्ध-भावों से गुणानुरागपूर्वक पच्चीस गुणों (ग्यारह अंग, चौदह पूर्व) के धारी उपाध्याय परमेष्ठी का गुणगान करना।

13. **प्रवचन-भक्ति :** विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक शास्त्र का गुणगान करना।

14. **आवश्यक-अपरिहाणि :** सामायिक, स्तवन (स्तुति), वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक कार्यों में कभी हानि न होने देना और प्रतिदिन नियत समय पर उनका अच्छी तरह से पालन करते रहना।

15. **मार्ग-प्रभावना :** सम्यग्ज्ञान के द्वारा, तप के द्वारा अथवा जिनेन्द्र भगवान की पूजा आदिक से जगत में जैन धर्म का प्रकाश फैलाना।

16. **प्रवचन-वत्सलत्व :** जैसे गाय को अपने बछड़े (बच्चे) से सहज स्नेह (प्रेम) होता है वैसे ही साधर्मी जनों को देखकर चित्त का प्रफुल्लित (प्रसन्न) हो जाना तथा यथायोग्य आदर सत्कार करना।

बारह भावनायें

1. **अनित्य-अनुप्रेक्षा** - यौवन, धन, गृह और परिजन आदिक मेघाकार व इन्द्र धनुष के समान परिवर्तनशील/अशाश्वत हैं ऐसा चिंतवन करना अनित्य-अनुप्रेक्षा है।

2. **अशरण-अनुप्रेक्षा** : इस संसार में प्राप्त हुए कोई भी समागम जीव को शरण नहीं। जैसे- सिंह के मुख को प्राप्त हुए हिरण को कोई बचाने में समर्थ नहीं, वैसे ही मृत्यु के आने पर सुर, असुर, विद्याधर, चक्रवर्ती, आदि को भी कोई भी मणि-मन्त्र-तंत्रादि विविध उपाय बचाने में समर्थ नहीं ऐसा चिंतवन करना अशरण-अनुप्रेक्षा है।

3. **संसार-अनुप्रेक्षा** : यह पञ्च परावर्तन रूप संसार जिसमें शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगते हुए संसारी जीव चतुर्गति में भ्रमण करते हैं; दुःखों से भरा हुआ है, इसमें वास्तविक सुख किञ्चित मात्र भी नहीं, इसमें जो झूठा क्षणिक-सुख नजर आता है, वह तलवार की धार पर लगे हुए मीठे को अपनी जिह्वा से चखने के समान दुःखदायी है ऐसा चिंतवन करना संसार-अनुप्रेक्षा है।

4. **एकत्व-अनुप्रेक्षा** : जन्म-मरण, सुख-दुःख आदिक अवस्थाओं को यह जीव अकेला ही भोगता है, माता-पिता, भाई, बन्धु आदिक कोई भी इस जीव के वास्तविक साथी नहीं, सभी स्वार्थ का अपनापन दिखलाने वाले हैं, ऐसा मन में बार-बार विचार लाना एकत्व-अनुप्रेक्षा है।

5. **अन्यत्व-अनुप्रेक्षा** : आत्मा से जब शरीर भी; मिले हुए जल और दूध के समान भिन्न स्वरूप वाला है तब धन, मकान, वैभव और परिजन आदि तो मेरी इस आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं; वे मेरे कैसे हो सकते हैं ऐसा बार-बार चिंतवन करना अन्यत्व-अनुप्रेक्षा है।

6. **अशुचि-अनुप्रेक्षा** : यह शरीर खून, मांस आदिक अपवित्र

धातुओं से बना हुआ है, इससे घिनावने नव मल द्वार बहते रहते हैं एवं इस शरीर को कितना भी खिलाने, पिलाने और सजाने पर यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता ऐसे अपवित्र अशुचिमय शरीर में रति नहीं करने रूप जो चिंतवन है वह अशुचि-अनुप्रेक्षा है।

7. **आस्रव-अनुप्रेक्षा :** मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योगों से नवीन कर्मों का आस्रव होता है और आस्रव ही दुःख का मूल है, इस प्रकार आस्रव से दूर होने के सम्बन्ध में चिंतवन करना आस्रव-अनुप्रेक्षा है।

8. **संवर-अनुप्रेक्षा :** सम्यक्त्व पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानों से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के क्रमशः अभाव या दूर हो जाने से सभी कर्मों का आत्मा में आना रुक जाना संवर है, ऐसी पुनःपुनः भावना भाना संवर-अनुप्रेक्षा है।

9. **निर्जरा-अनुप्रेक्षा :** जो कर्म स्वयं अपनी स्थिति आने पर फल देकर खिर जाता है (निर्जरित हो जाता है) उस निर्जरा से मोक्ष नहीं मिलता और पुरुषार्थ पूर्वक जो बारह तपों से कर्मनिर्जरा की जाती है उसी से शिव (मोक्ष) सुख का लाभ होता है ऐसी भावना करना निर्जरा-अनुप्रेक्षा है।

10. **लोकानुप्रेक्षा :** जो यह षड् द्रव्यमय 343 घन राजू प्रमाण लोक है इसे किसी ने बनाया नहीं, न इसे कोई धारण करता है, और न ही इसका कोई नाश करता है । ऐसे अनादि-अनिधन इस लोक में संसारी जीवात्माएँ अनन्त बार जन्म-मरण करती रहती हैं इस प्रकार चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है।

11. **बोधि-दुर्लभ-अनुप्रेक्षा :** इस जीव को अनेक बार राजा, अहमिन्द्र जैसे पद प्राप्त हो जाते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति इसे अति दुर्लभ है एवं इस जीव को ऐसे रत्नत्रय की एक बार भी प्राप्ति होने के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति

शीघ्रातिशीघ्र हो जाती है, ऐसी उत्तम-भावना भाना बोधि-दुर्लभ-अनुप्रेक्षा है।

12. **धर्मानुप्रेक्षा :** परमार्थ रूप से रत्नत्रय धर्म एवं '**अहिंसा परमो धर्मः**' ही भव्य आत्माओं का कल्याण करने वाला है। इसे अपने हृदय में धारण करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं एवं अचल मोक्ष सुख प्राप्त होता है, ऐसा बार-बार चिंतवन करना धर्म-अनुप्रेक्षा है।

सात-भावनाएँ

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥ - समाधिभक्ति-2

1. शास्त्रों का अभ्यास करना। 2. जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करना। 3. सभी आर्य पुरुषों की संगति करना। 4. सद्वृत्ति (अच्छे आचरण) वालों का गुण-गान एवं उनकी कथा सुनना। 5. दोषों को कहने में मौन रहना। 6. सब जगह प्रिय, और हित रूपी वचन बोलना और 7. अपनी आत्म-तत्त्व की भावना भाना।

हे प्रभो! जब तक मोक्ष न मिले तब तक ये सात भावनाएँ हम हमेशा भाते रहें अर्थात् चिन्तवन करते रहें।

चार-भावनाएँ

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥ - द्वात्रिंशतिका-1

1. **सत्वेषु मैत्रीं** - सदा सब जीवों पर मैत्री-भाव हो।

2. **गुणिषु प्रमोदं** - गुणी-जनों में आल्हाद या स्नेह-भाव हो।

3. **क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्** - दुःखी जीवों पर करुणा-भाव हो।

4. **माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ**- विपरीत-प्रवृत्ति-वालों पर माध्यस्थ-भाव रहे।

तीन भावनाएँ

तत्त्व श्रद्धान रूप **सम्यग्दर्शन,** संशयादि दोष रहित **सम्यग्ज्ञान** और अहिंसादि व्रत पालन रूप **सम्यक्चारित्र** इन रत्नत्रय की प्राप्ति रूप तीन भावनाएँ कहलाती हैं।

दो भावनायें

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ।- त.सू. 7/12

1. संवेग-भावना - ''संसारान् दुःखान् नित्य भीरुता संवेगः''। संसार के दुःखों से अर्थात् दुःखों के कारण रूप पापों से हमेशा डरते रहने का नाम संवेग-भावना है।

2. वैराग्य-भावना :- इस नश्वर अशुचि-मय शरीर के स्वभाव का चिंतवन करते हुए इससे निर्ममत्व होना वैराग्य-भावना है।

एक-भावना

एक मात्र आत्मा के सम्बन्ध में चिंतन करना। जैसे-

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।

णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥

- समयसार 46

अर्थ :- मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञान मय स्वरूपी हूँ, सदा अरूपी हूँ, कुछ भी परमाणु मात्र परद्रव्य मेरा नहीं है।

सम्यक्-ध्यान-शतक-शब्दकोष

अणुव्रत - स्थूल रूप से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पंच पापों का त्याग करना अणुव्रत है।

अर्थ - ध्येय, प्रयोजन, द्रव्य और पर्याय।

अथ - प्रारम्भ।

अधर्म - मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र को अधर्म कहते हैं।

अध्येता- अध्ययन करने वाला।

अध्यात्म- आत्मा से सम्बन्धित।

अनिष्ट-संयोग-अपने लिए बाधा देने वाले पदार्थ या अच्छे नहीं लगने वाले पदार्थों के मिल जाने पर वे कब दूर हो जायें ऐसा चिंतन अनिष्ट संयोग आर्त्तध्यान है।

अन्तर्मुहूर्त्त - 48 मिनिट की दो घटिका से कुछ कम और आवली से अधिक काल को अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं।

अनुकम्पा- दया, करुणा, जीव-रक्षा।

अनुभूति - अनुभव।

अपाय-विचय - संसारी आत्मा मिथ्यात्व या मिथ्यामार्ग अथवा पंच मिथ्यात्व और दुर्गति आदि कष्टों से कैसे बचें ऐसा चिंतन करना अपाय विचय धर्मध्यान है।

अपूर्वकरण- जैनागम संस्कार पृ.184 पर देखें।

अप्रमत्तसंयत- प्रमाद रहित सावधान मुनि।

अभिराम - सम्पूर्ण।

अभिव्यंजना- प्रकट करना।

अयोग - जो मन, वचन, काय की क्रिया से रहित है उसे अयोग कहते हैं।

अरति- अप्रीति रूप परिणाम।

अर्हत् - पूजन करने योग्य।

अवतार - पुनर्जन्म।

अवदान- पवित्र व मान्यता प्राप्त वृत्ति, सम्पन्न कार्य।

अव्रत- अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का अभाव।

अशन - भोजन ।

असंयत सम्यग्दृष्टि- व्रतरहित होकर भी वीतराग- मय जिनधर्म पर श्रद्धा धारक।

अस्तिकाय - जो बहुप्रदेशी हैं वे अस्तिकाय हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पाँच अस्तिकाय हैं।

अष्टम-गुणस्थान - जिस गुणस्थान में संज्वलन कषाय का मन्दोदय होने से पूर्व में अप्राप्त ऐसे परम आह्लाद सुख के अनुभव रूप अपूर्व-अपूर्व (नए-नए) परिणाम होते हैं। इस गुणस्थान में होने वाले उपशमक और क्षपक अपूर्वकरण नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती कहलाते हैं।

अहमिन्द्र- जहाँ सामान्य देव नहीं होते, बल्कि सभी स्वयं इन्द्र होते हैं।

अक्ष - इन्द्रियाँ।

अक्ष-व्यापार - इन्द्रियों के कार्य।

आकुलता - चिंता, अशांति, अथवा सांसारिक आशायें।

आत्म-शांति -आत्मलीनता या अपने आत्मिक आनन्द को आत्म-शान्ति कहते हैं।

आत्म-अभिषेक - परिमार्जन, आत्म शुद्धि / पवित्रता या शुभ ध्यान।

आत्म - निज, चेतना।

आत्म-गुण - ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि।

आत्मसात्- अंतरंग में ग्रहण।

आदर्श - श्रेष्ठ।

आदेश - आज्ञा।

आधार – जिसके सहारे वस्तु रहती है वह आधार कहलाता है।

आमिस – मांस। जिसमें अपक्व या अग्निपक्वादि किसी भी अवस्था में अनंत त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं। और जो आहार न होते हुए अभक्षणीय वस्तु है। इसी मांस के अन्तर्गत अण्डे, मछली भी शामिल किये जाते हैं।

आप्त – वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी अर्हन्त-भगवान को आप्त कहते हैं।

आर्य- धर्म, कर्म से गुणवान पुरुष।

आस्तिक्य – आस्था व श्रद्धावान रूप गुण।

सम्बन्धी सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग तथा श्रावकों सम्बन्धी देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

आज्ञा विचय – जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित आगम वचन ही सत्य और कल्याणकारी हैं ऐसा चिंतवन कर सात तत्त्व, छह द्रव्य आदि के स्वरूप का विचार करना आज्ञा विचय नाम का धर्मध्यान है।

इन्द्र- आज्ञा व ऐश्वर्य वाला देव।

इष्ट – अपनी प्रिय वस्तु जिसके बिना रुचिकर नहीं लगे ऐसी वस्तु को इष्ट वस्तु (पदार्थ) कहते हैं।

ईश – इष्ट देवता, वीतराग परमेष्ठी।

उपयोग – स्व और पर को जानने और देखने वाले जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं।

उपवास – खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय ऐसे चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है।

उपदेश – प्रवचन ।

उपसर्ग – उपद्रव जो कि देवकृत, मनुष्य कृत, तिर्यञ्चकृत और प्रकृतिकृत इस तरह चार प्रकार के होते हैं।

उपादान- अन्तरंग कारण रूप शक्ति।

ऊर्जा – एक आन्तरिक शक्ति।

ऊहापोह – तर्कणा, बार-बार चिन्तवन और मन्थन करना।

एकाशन – एक बार आहार करना।

एकान्त – निर्जन या शांत स्थान।

एकाग्र – ध्यान का एक जगह टिकना।

एकत्व-वितर्क-अविचार – मोहनीय कर्म को पूर्णतः नष्ट करने के लिए साधु मन-वचन-काय रूप किसी एक योग में स्थित रहकर, अर्थ, व्यंजन व योग के परिवर्तन से रहित होकर श्रुत के माध्यम से जो किसी एक द्रव्य, गुण या पर्याय का चिंतवन करते हैं उसे एकत्व वितर्क अविचार नामक द्वितीय शुक्ल-ध्यान कहते हैं।

ओम् – जिसमें पंच परमेष्ठी समाहित हैं वह ओम् (**ॐ**) है ।

कंद – आलु, प्याज आदि जीवों के रहने के स्थान रूप जमीन के अन्दर उत्पन्न होने वाली कुछ तामसिक वनस्पतियों को जमीकंद कहते हैं।

कर्णिका – कमल के बीच का उन्नत भाग।

कर्म – जीव के रागद्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्मणवर्गणा रूप जो पुद्गलस्कन्ध जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं।

कल्याण– उद्धार।

कषाय– कर्मबंध कारक कलुषित परिणाम।

कायोत्सर्ग – शरीर से ममत्व छोड़कर ध्यान में लीन होना कायोत्सर्ग कहलाता है।

काल – समय।

कुदर्श – मिथ्यादर्शन।

कृतकृत्य– करने योग्य कर्त्तव्य को कर चुकने वाला आत्मा।

केवलज्ञानी – तीनों लोकों और अलोक को भी युगपत् जानने वाले।

केवलज्ञान/ कैवल्य– जो सकल चराचर जगत् को दर्पण में झलकते प्रतिबिंब की

तरह एक साथ स्पष्ट जानता है वह केवलज्ञान है।

केवली – जो इन्द्रियों की सहायता से रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन से युक्त हैं उन्हें केवली कहते हैं।

क्षीणकषाय– कषाय रहित बारहवाँ गुणस्थान।

क्षेत्र – स्थान ।

खड्गासन– खड़े होकर व्यवस्थित ध्यान करना।

खेद – कष्ट ।

गम – दुःख।

गणधर – मुनि समूह के स्वामी।

गति-आगति – चारों गतियों में जन्म और मरण होना।

गरिष्ठ पदार्थ – अपने अन्दर उत्तेजना लाने वाले पदार्थ जैसे – मेवा, बादाम, काजू आदि और खोवा, मिठाई, हलुवा आदि।

गवासन– गाय की तरह पैर पीछे मोड़कर बैठना।

गिरनार – यहाँ से बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान मोक्ष गये हैं। यह गुजरात में स्थित है।

गुणथान – मोह और योग के माध्यम से जीव के परिणामों में होने वाले उतार-चढ़ाव को गुणस्थान कहते हैं।

गुण अनन्त – जिसकी आत्मा में गुणों की संख्या अनन्त हो।

गुप्ति – मन, वचन, काय (शरीर) की क्रिया को रोकना अथवा मन को धर्मध्यान में लीन करना गुप्ति है।

गुरु – जो निर्मोही और निर्ग्रन्थ महान पुरुष होते हैं उन्हें गुरु कहते हैं।

गोपाचल – यह ग्वालियर किला के पूर्व तरफ है यहाँ पर 42 फुट ऊँची पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा पद्मासन में विराजित है और भी कई मूर्तियाँ गुफाओं में उकेरी गई हैं।

ग्यारह-अंग- जैनागम संस्कार (अ.1, पृ.7) पर देखिये

घातिकर्म - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिकर्म कहलाते हैं।

चक्रवर्ती- षट्-खण्ड पृथ्वी का स्वामी।

चम्पापुर - इस क्षेत्र से बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य मोक्ष गये हैं। यह बिहार देश में है।

चरणानुयोग- श्रावक व मुनि के आचरण को बतलाने वाला शास्त्र।

चारित्र - व्रतों का पालन करना। वह श्रावकों के अणुव्रत या देशसंयम रूप होता है और मुनियों के महाव्रत या सकलसंयम रूप होता है।

चिद्रूप - आत्म रूप।

चिदानन्द - आत्म-आनन्द।

चिन्तामणी- मनोवाच्छित वस्तुप्रदायक रत्न।

चौदहवें-गुणस्थान - जो अठारह हजार-शीलों के स्वामी हैं, जो आस्रव से रहित हैं, जो मन, वचन, काय से रहित हैं, और केवलज्ञान से विभूषित हैं, वे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी जिन कहलाते हैं।

चौदह-पूर्व- जैनागम संस्कार (अ.1, पृ.7) पर देखिये।

चौर्यानंद - चोरी में आनन्द मानना।

जग - विश्व या लोक।

जन्म - शरीर का उत्पन्न होना।

जगत् वंद्य - तीन लोक में रहने वाले सभी जीवों से पूज्य।

जगत् से राग - स्व-आत्म से अन्य या भिन्न वस्तुओं से ममत्व।

जम्बूदीप- मध्यलोक का प्रथम द्वीप।

जाप - मंत्रों का उच्चारण या अन्तर्जल्प-मंत्र चिन्तवन।

जिन - ''इन्द्रियाणि जयतीति जिनः'' जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है उन्हें जिन कहते हैं।

जिनेन्द्र- इन्द्र अर्थात् इन्द्रियों को जीतने वाले होने से जिनेन्द्र या जितेन्द्र कहलाते हैं।

जीव – जो जानता और देखता है उसे जीव कहते हैं। या जो प्राणों से जीता है उसे जीव कहते हैं।

ज्ञान – जानना मात्र ही ज्ञान है या जिसके द्वारा जाना जाए वह ज्ञान है।

तत्त्व – जिस वस्तु का जो भाव है वही तत्त्व है। जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है उसका उस रूप होना यही तत्त्व शब्द का अर्थ है।

तत्त्व-धारणा – जिस वस्तु का जो भाव है वही तत्त्व है। ऐसा अनन्त-ज्ञान, दर्शन आदि परम-तत्त्वों से सम्पन्न आत्मा; देह और संसार से विलग भाषित हो रहा है ऐसा चिंतवन करना।

तामसिक – मांस, नशीली वस्तु, जमीकंद आदि और ज्यादा मिर्च वाले पदार्थों को तामसिक भोजन कहते हैं।

तेरहवें-गुणस्थान – जिनका केवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से अज्ञान-अंधकार नष्ट हो गया है, जो केवलज्ञानी होने से परमात्म-संज्ञा को प्राप्त हुए हैं, ऐसे केवली, सयोगी-जिन आदि विशेषणों से युक्त आत्मा सयोग-केवली नामक तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहलाती है।

त्रस – दो इन्द्रिय आदि जीवों को त्रस कहते हैं। जैसे-लट्, चींटी, भ्रमर और मनुष्य आदि।

त्रिशलागिरि – ग्वालियर में जो गोपगिरि पर्वत है उसकी पश्चिम दिशि में महावीर भगवान की प्रतिमा सह उनके पंच कल्याणक जहाँ पत्थरों में उकेर कर दर्शाये हैं।

दया – जीवों की रक्षा करना दया है।

दर्शन – सम्यग्दर्शन।

द्वादशांग – दिव्य-ध्वनि के बारह-अंग।

दिगम्बर- दिशाएं ही जिनके वस्त्र हैं ऐसे निर्वस्त्र मुनि।

दूरबीन – लेन्स (दूर की वस्तु को स्पष्ट देखने के लिये काम में आने वाला यंत्र) ।

देव – जो सदा परम सुख में लीन रहते हैं, जो जन्म–मरण रूप संसार से मुक्त हो गए हैं, और जो धर्म के विधाता हैं वे देव कहलाते हैं या देवगति के देवों से भी पूज्य ऐसे अरिहंत, सिद्ध रूप देवाधिदेव ।

देवपूजा– वीतराग सर्वज्ञ देव की पूजा ।

देशना – भगवान की वाणी ।

द्रव्य – वस्तु या सामग्री ।

धर्म – 'धरतीति धर्मः' जो उत्तम सुख में रख देता है वह धर्म है ।

धारणा – पृथ्वी आदिक पांच के आलंबन से या पंच–नमस्कार मंत्र व जिनप्रतिमा के आलम्बन से मन को एकाग्र करना धारणा नाम का ध्यान है ।

धीमान – बुद्धिमान, या विद्वान ।

ध्यान – चित्त या उपयोग की एकाग्रता का नाम ध्यान है ।

ध्याता – ध्यान करने वाला ।

ध्येय – ध्यान करने योग्य ।

नमन – नमस्कार ।

नव–देव – अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व–साधु, जिन–धर्म, जिन–श्रुत, जिन–चैत्य, और जिन–चैत्यालय ये नवदेवता कहलाते हैं ।

नवमल– नाक का मैल, कान का मैल, आँखमल, दंतमल, पुरीस, मूत्र, रोम और नख ।

नशा – मादक पदार्थ ।

नाथ – स्वामी ।

नाशादृष्टि – जिसकी आशा पर दृष्टि नहीं है और नाक के अग्र भाग की सीध में अर्थात् जो न बंद न अधिक खुली दृष्टि है वह राग–द्वेष दूर नाशादृष्टि कहलाती है ।

निज – आत्मा।

निजसुख – अपना आत्म-सुख।

निजानुभव – आत्मानुभूति।

निज एक सो तेरा – जो अपना एक आत्मा है वही तेरा है ॥

निर्मल – क्षोभ से रहित निश्चिन्तता।

निश्चल – चलन रहित / स्थिरता।

निदान – आगे इन्द्र आदि की भोग सम्पदा मिले ऐसा परिणाम निदान कहलाता है।

निद्रा – नींद आना।

निमित्त – जो कार्य के होने में सहयोगी हो या जिसके बिना कार्य न हो उसे निमित्त कहते हैं।

निर्ग्रन्थ – धन-धान्यादि परिग्रह को ग्रन्थ कहते हैं अतः जो समस्त परिग्रहों से रहित हैं वे साधु निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

निरंजन – कर्म रूपी अंजन से रहित।

निवृत्ति – छूटना।

निष्कलंक – कर्म-कलंक से रहित।

निश्चय – अभेद एकत्व या परसम्पर्क से रहित शुद्धात्मा में लीन मुनि।

निशि – रात्रि।

निषद्या – बैठकर गवासन से नमस्कार करना।

नेक – अच्छा।

नेमिगिरि – ग्वालियर में गोपाचल की ईशान दिशि में नेमिनाथ भगवान का तीर्थ रचित है।

पंचपरावर्तन– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पंच परावर्तन।

पंचाचार – ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार ये पंचाचार

कहलाते हैं।

पंचास्तिकाय- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ऐसे पाँच द्रव्य।

पदस्थ - एक अक्षर से प्रारम्भ करके अनेक प्रकार के पंचपरमेष्ठी वाचक पवित्रमंत्र आदिक पदों का आलम्बन लेकर जो ध्यान किया जाता है वह पदस्थ ध्यान है।

पद्मासन- बैठकर दोनों पंजे; पैर और जंघा पर पद्म या पांखुड़ी की तरह रखना।

परमेष्ठी - जो परम-पद में स्थित हैं वे परमेष्ठी कहलाते हैं।

परमतत्त्व - शुद्ध जीव तत्त्व।

परमशान्ति - उत्कृष्ट आनन्द।

परमार्थ - मोक्ष ही जिसका प्रयोजन है वह परमार्थ है।

परमातम - उत्कृष्ट आत्मा रूप भगवान को परमातम कहते हैं।

परिग्रहानन्द - परिग्रह में आनन्द मानना।

परिषह- बाईस तरह की बाधाएँ।

पाक - फल मिलना या फलश्रुति।

पावापुर - यहाँ से चौबीसवें तीर्थंकर महावीर भगवान मोक्ष गये हैं। यह बिहार देश में है।

पिंडस्थ - निजात्मा का धारणाओं के माध्यम से चिंतवन करना पिंडस्थ ध्यान है।

पीड़ा-चिंतन - शरीर की पीड़ा, या रोगादिक की पीड़ा होने पर वह कब मिट जाये ऐसा चिंतन पीड़ा-चिंतन आर्त्तध्यान है।

पुराकृति- पूर्व-कृत।

पृथक्त्व-वितर्क-वीचार - इस ध्यान में महामुनि समस्त रागादि विकल्पों से रहित होकर अनेक द्रव्यों का अलग-अलग आलम्बन लेकर अर्थ, व्यंजन और योगों में परिवर्तन करते हुए श्रुतज्ञान के माध्यम से ध्यान करते हैं। यह पहला शुक्ल ध्यान है।

पृथ्वी धारणा - इस भूमि पर मैं क्षीरसागर के बीच स्थित पर्वत की चोटी पर साधु बनकर बैठा हूँ ऐसा चिन्तवन करना।

प्रकृति – स्वाभाविक वातावरण रूप पर्यावरण।

प्रतिक्रमण– पापों का प्रक्षालन।

प्रतिपाती – गिरने वाला।

प्रत्याख्यान– त्याग।

प्रभु – स्वामी, भगवान।

प्रमत्तसंयत– मुनि की प्रमाद अवस्था।

प्रमाद – आलस्य। या आध्यात्मिक दृष्टिकोण से स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र रूप पंच-इन्द्रियों, क्रोध, मान, माया और लोभ-रूप चारकषायों, स्त्रीकथा, भोजनकथा, राष्ट्रकथा और चोर कथा रूप चार विकथाओं तथा निद्रा और स्नेह रूप इन पंद्रह प्रमादों में आत्म-परिणाम प्रयुक्त होना प्रमाद कहलाता है।

प्रशम–शांत परिणाम।

प्रमोद – हर्षित होना।

प्रासुक – जल व वनस्पति आदि को विशेष प्रक्रिया के द्वारा (गरम आदि करके) जीवों से रहित बनाना प्रासुक कहलाता है।

फलश्रुति– सत्कर्म विशेष का फल बतलाने वाला वाक्य।

बंध – कर्म का आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना बंध कहलाता है।

बाधक – जो अपने लिये बाधा उत्पन्न करने वाली वस्तु हो उसको बाधक कहते हैं।

बारहवें-गुणस्थान – मोहनीय कर्म के निःशेष क्षीण हो जाने से जिसका चित्त स्फटिक मणि के निर्मल भाजन में रक्खे हुए सलिल के समान स्वच्छ हो गया है ऐसे निर्ग्रन्थ साधु को वीतरागियों ने क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान वाला संयत कहा है।

ब्रह्मा – आत्मा को जानने वाला।

बुद्ध – ज्ञानी।

बोधगम्य– जानने योग्य।

भव - आयु कर्म के उदय से जीव की जो मनुष्य, देव आदि पर्याय होती है उसे भव कहते हैं।

भव-वांछा - लौकिक या सांसारिक आशायें।

भाव - परिणाम।

भावन - चिन्तवन करने योग्य शुभ भावनायें।

भावनाएँ - शुभचिंतवन (शब्द कोष के अंत में देखें सत्तर प्रकार की भावनाएँ वर्णित हैं।)

भोग - जो वस्तु एक ही बार भोगने में आती है उसे भोग कहते हैं। जैसे- भोजन गन्ध, मालादि।

भोगोपभोग परिमाण- भोग और पुनः भोगने योग्य वस्त्रालंकार आदि का प्रमाण-सीमा करना।

भोगी - भोगों का सेवन करने वाले गृहस्थ।

भोज - भोजन। (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय)

मन - पंच इन्द्रियों द्वारा ग्रहीत किये गए पदार्थों में जो गुण दोषों का विचार व स्मरण आदि करता है वह मन है। द्रव्य मन; अष्टदल कमलाकार शरीर के हृदय स्थल पर होने वाली एक पुद्गल रूप रचना है जिसे हृदय, अन्तःकरण आदि भी कहते हैं।

मझार - बीच ।

महद्- सर्व-श्रेष्ठ।

मावा- खोवा

मर्यादित - मर्यादा से सहित पदार्थ जैसे - आटा की मर्यादा गर्मी में 5 दिन, वर्षाकाल में 3 दिन, शीतकाल में 7 दिन की है वैसे अन्य चीजों की मर्यादाएँ इसी पुस्तक के अंत में दिये गये चार्ट में देखें।

मिथ्यात्व- कुतत्त्व श्रद्धा।

मारुत - हवा।

मिथ्यादृष्टि- सरागी या कुतत्त्व पर श्रद्धा रखने वाली आत्मा।

मीमांसा- गम्भीर मनन व विचार।

मुनि - 'मौनं धारतीति मुनिः' जो पाप से मौन रहते हैं उन्हें मुनि कहते हैं।

मुनिवर - जो मुनियों में श्रेष्ठ होते हैं वे मुनिवर हैं।

मुक्ति - अष्ट-कर्मों से रहित होना मुक्ति है।

मृषानंद - झूठ में आनन्द मानना।

मृत्यु - शरीर से आत्मा निकल जाना।

मेवे- सूखे फल- पिस्ता, बादाम, काजू, किसमिश, मुनक्का आदि।

मैत्री - अपनापन-आत्मीयता या मित्रता।

मोक्ष - समस्त कर्मों से रहित आत्मा की परम विशुद्ध-अवस्था का नाम मोक्ष है।

मोक्ष-मग - मग अर्थात् मार्ग। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्ष-मग या मोक्ष-मार्ग है।

मौन- पाप-वचन या वचन क्रिया को रोकना।

यथाख्यात - समस्त मोहनीय कर्म के उपशान्त या क्षीण हो जाने पर जो स्वभाविक वीतराग-चारित्र उत्पन्न होता है उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

यति - जो हमेशा यत्न या पुरुषार्थ करते हैं उन साधु को यति कहते हैं।

योग - मन, वचन, और काय के द्वारा होने वाले आत्म-प्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं।

योगी - योगों को धारने वाले (मुनि महाराज साधु आदि)।

रंक - गरीब।

रत्नत्रय - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र - इन तीन गुणों को रत्नत्रय कहते हैं।

रसना - जो हमें स्वाद चखाती है उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं।

राजसिक - पूड़ी, पकवान आदि गरिष्ठ पदार्थों को राजसिक भोजन कहते हैं।

राजू- एक अलौकिक माप। (देखिये- आगम-अनुयोग)

रूपस्थ - आत्मा हमेशा चेतन रूप अर्थात् ज्ञान, दर्शन स्वभाव वाला है ऐसा चिंतवन करना रूपस्थ ध्यान है।

रूपातीत - आत्मा कर्म कलंक से रहित है, तीनों काल में शुद्ध है, निरंजन है ऐसा चिंतन करना रूपातीत ध्यान है।

रौद्र -ध्यान - रुद्र का अर्थ क्रूर है और क्रूर आशय रूप परिणाम होना रौद्र-ध्यान है।

लोक- जहाँ छह द्रव्य देखे जावें।

लख चौरासी योनि -जीव के जन्म लेने के स्थान को योनि कहते हैं वे 84 लाख हैं।

वज्रवृषभनाराच संहनन - जिस कर्म के उदय से शरीर में अभेद्य वज्र मय वेष्ठन होता है और हड्डियाँ परस्पर वज्रमय नाराच अर्थात् कील से जुड़ी होती हैं ऐसा हड्डियों का सुदृढ़ बंधन वज्र-वृषभ-नाराच संहनन कहलाता है।

वन्दना- वीतराग को नमन।

वज्रासन- दोनों पैर मोड़कर, उन पैरों पर सीधा बैठना।

वय जेष्ठ - चिरंजीव या लम्बी उम्र।

वर्धमान मन्दिर किला - गोपगिरि ग्वालियर में किला के परिसर में (वर्तमान सिंधिया स्कूल के मैदान के अन्दर यह मन्दिर है) यहाँ पर पहले भगवान महावीर की अवगाहना (ऊँचाई) के बराबर स्वर्ण की प्रतिमा थी; अभी भी उस मन्दिर के पाषाण के द्वार पर पहली मंजिल में पार्श्वनाथ और तीसरी मंजिल में महावीर भगवान की दिगम्बर जैन प्रतिमाएं बनी हैं।

वस्तु-स्वभाव - वस्तु के गुण-धर्म को वस्तु-स्वभाव कहते हैं जैसे जल का गुण-धर्म शीतलता, अग्नि का स्वभाव उष्णता आदि।

वायु-धारणा - जले हुए कर्मों की राख को तीव्र वायु उड़ा ले जा रही है ऐसा चिन्तवन करना।

विपाक-विचय - संसार में जीवों को जो पुण्य और पाप कर्म का फल प्राप्त होता रहता है उसका चिंतवन करना विपाक-विचय धर्म ध्यान है।

विरंग - विकल्पों से रहित निर्विकल्पता।

विद्या गुरु - संत शिरोमणी आचार्य विद्यासागर जी महाराज; जिनसे आचार्यश्री आर्जवसागरजी दीक्षित हैं।

विद्याधर- आकाश में विचरण करने वाले विजयार्ध श्रेणी में रहने वाले मनुष्य।

विषय-पवन - इन्द्रियों के द्वारा जानने योग्य पदार्थ को विषय कहते हैं। पवन मतलब हवा।

वीतराग - आत्म-साधना के द्वारा जिन्होंने राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है उन्हें वीतराग कहते हैं।

वीतरागी - राग, द्वेष से रहित आत्मा वीतरागी कहलाती है।

वीर-निर्वाण - भगवान महावीर का मोक्ष दिन (दीपावली से नया वीर निर्वाण संवत् प्रारम्भ होता है।)।

वीरासन- पद्मासन को छोटा करते हुए पंजे; जंघाओं पर थमाना।

वृषभांचल - ग्वालियर किला पर उरवाही द्वार से चढ़ते समय बीच में 84 फुट ऊँची आदिनाथ भगवान की प्रतिमा खड्गासन में जहां विराजमान है उस परिसर को वृषभांचल कहते हैं।

व्यंजन : वचन, शब्दशक्ति जिससे अर्थ उपलक्षित हो ऐसी ध्यान योग्य वस्तु।

व्युपरतक्रिया निवृत्ति - केवली-भगवान के द्वारा जब श्वासोच्छवास रूप क्रिया का तथा समस्त मन-वचन-काय की क्रिया का निरोध कर दिया जाता है तब यह व्युपरतक्रिया-निवृत्ति नाम का चौथा शुक्ल-ध्यान कहलाता है।

श्वेतासन - धवल-पीठ।

शिव-मंजिल - मोक्ष रूपी महल।

शिवधाम - सिद्धों का स्थान (लोक के ऊपर स्थित सिद्धशिला)।

शुक्ल-ध्यान - रागादि विकल्प नष्ट हो जाने पर आत्मा में जो निर्विकल्प - ध्यान की प्राप्ति होती है उसे शुक्ल-ध्यान कहते हैं।

शुद्धोपयोग- वीतरागी, संयमी, तपस्वी और समताधारी मुनि की विशुद्ध अवस्था।

शुभ-ध्यानी - प्रशस्त या श्रेष्ठ रूप धर्म ध्यान फिर शुक्ल-ध्यान करने वाला आत्मा।

शुभ रूप - मंगल स्वरूप।

शुभचन्द्राचार्य- भर्तृहरि के बड़े भाई दिगम्बर निर्ग्रन्थाचार्य।

शोक - उपकार करने वाले से संबंध छूट जाने पर जो चित्त में विकलता होती है उसे शोक कहते हैं।

शोधित - जीव, बालादिक का शोधन करके या एकाग्रतापूर्वक देखकर के बनाया गया।

श्रुत - शास्त्र।

श्रेष्ठी- सेठ।

संग - परिग्रह ।

सच्चा-सौख्य - जिसके पीछे दुःख नहीं है वह सच्चा-सौख्य है।

सद्गुण-गण - उत्तम गुणों का समूह।

सप्ततत्त्व- जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

सम्यक् - सम्यक् का अर्थ समीचीन या सच्चा है।

संयतासंयत- अणुव्रती अथवा देशसंयमी।

संयम - मन, वचन, काय की अशुभ-प्रवृत्ति का त्याग करना तथा इन्द्रियों को वश में रखना यह संयम है।

संयम-सुख - त्याग में आनन्द।

संयोग - मिलन/सम्पर्क।

संवेग - दुःख-मय संसार के पापों से सदा डरते रहना संवेग कहलाता है।

संसार - "संसरतीति संसारः" इस जीव का देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक इन चारों गतियों में जो भ्रमण होता है उसको संसार कहते हैं।

संसर्ग - लगाव या सम्बन्ध।

संस्थान-विचय - तीन लोक की रचना और उसके प्रमाण, भेद आदि व शुद्ध-द्रव्य का चिंतवन करना संस्थान-विचय धर्म ध्यान है।

संहनन - हड्डियों की शक्ति विशेष को संहनन कहते हैं।

सत्योग - अच्छा योग।

सप्त व्यसन- जुआ, चोरी, शिकार, मांस, शराब, परस्त्री-सेवन और वेश्यागमन।

सम - सम्यक् या सच्चा। अथवा-

सम - सुख, दुःख में शत्रु, मित्र आदि में समान-भाव होना सम कहलाता है।

समता - शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, लाभ-अलाभ और जय-पराजय आदि में हर्ष-विषाद नहीं करना समता है। अथवा वीतराग सम्यक्त्व व चारित्र का होना।

समकित - सम्यग्दर्शन।

समदर्शन- सम्यग्दर्शन।

समाधि - वीतराग-भाव से आत्मा का ध्यान करना समाधि है। अथवा समस्त विकल्पों का नष्ट हो जाना परम समाधि है।

समिति- समीचीन प्रवृत्ति रूप मुनि की पंच समितियाँ। (देखिये जैनागम संस्कार अ.11, पृ.98)

सम्मेदगिरि - शाश्वत् सिद्धक्षेत्र; इसी महान क्षेत्र से वर्तमान चौबीसी में से 20 तीर्थंकर मोक्ष गये हैं। ये झारखंड में स्थित है।

सम्यग्मिथ्यात्व- दही गुड़वत् सम्यक्त्व व मिथ्यात्व रूप मिश्र परिणाम रूप अवस्था।

सयोगकेवली- योग सहित केवली।

सयोगी-जिन - जो तीनों योगों से युक्त केवली हैं उन्हें सयोगी-जिन कहते हैं।

सर्वज्ञ – सब कुछ जानने वाले भगवान सर्वज्ञ कहलाते हैं।

साकार– उजागर या साक्षात्।

सात्विक – दाल, रोटी, चावल, फल, साक, सब्जी आदि को सात्विक भोजन कहते हैं।

साध्य – साधने (प्राप्त करने) योग्य लक्ष्य।

साधु – 'आत्मानां साधतीति साधुः', जो आत्मा की साधना करते हैं वे साधु हैं।

साम्य – समान भाव या समता भाव।

सामायिक – निश्चित समय पूर्वक समता-भाव रखना सामयिक है और सामयिक का भाव सामायिक है। (अथवा विधिवत् त्रिकाल सम्यक्ध्यान करना)।

सार्वमय – सर्वज्ञ।

सासादन– सम्यग्दर्शन से छूट करना मिथ्यात्व की ओर गमन।

सिद्ध – समस्त आठ कर्मों के बन्धन को जिन्होंने नष्ट कर दिया है ऐसे नित्य निरंजन परमात्मा ही सिद्ध कहलाते हैं।

सिद्धांचल – ग्वालियर के पर्वत पर जहाँ पर 23 फुट ऊँची नमिनाथ भगवान की प्रतिमा पद्मासन में विराजमान है, और भी कई मूर्तियाँ गुफाओं में स्थित हैं।

सद्गुण-गण – उत्तम गुणों का समूह।

सिद्धासन– बैठकर एक पैर दूसरे पैर पर रखकर रीढ़ सीधी कर बैठने रूप आसन।

सुख – अपार आनन्द।

सुबह, मध्य, शाम – प्रातःकाल, दोपहर और सायंकाल।

सुप्रतिष्ठित केवली – इन्होंने ग्वालियर गोपगिरि से आठों कर्मों का क्षय करके मुक्ति-पद को प्राप्त किया है।

सुसुम्णा-योग – सूर्य, चन्द्र दोनों स्वर युगपत् चलते समय ध्यानस्थ-अवस्था।

सुसौम्य – बहुत सुन्दर।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती – जिन्होंने द्वितीय शुक्ल-ध्यान के द्वारा चार घातिया कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है ऐसे केवली भगवान जब आयु का अन्तर्मुहूर्त्त काल शेष रहता है तब सब प्रकार के वचनयोग, मनोयोग और बादर काययोग का निरोध करके सूक्ष्म-काययोग का आलम्बन लेकर जो ध्यान करते हैं वह सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तीसरा शुक्ल ध्यान है।

सोपान – सीढ़ी।

स्तवन– स्तुति।

स्थावर – एक इन्द्रिय जीवों को स्थावर कहते हैं। जैसे-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। इन जीवों के पास मात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

स्पर्शन – जो हमें छूकर ज्ञान कराती है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

स्वर पंच लघु – अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पाँच लघु स्वर हैं।

स्वस्थ-ध्यान – अरोग्य मय निश्चल शुभ ध्यान।

स्वाधीन – अपने अधीन ।

षड्द्रव्य– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

हरि – जिन्होंने कर्मों को हरा दिया है वे हरि कहलाते हैं।

हितोपदेशी – हित अर्थात् सुख या कल्याण के मार्ग का उपदेश देने वाले।

हिंसानंद – हिंसा में आनन्द मानना।

हेतु – कारण या साधन।

साम्य-भावना (सामायिक पाठ)

-आचार्यश्री आर्जवसागरजी

1. सब जीवों को हो क्षमा, क्षमा करें सब जीव ।
गुणियों के प्रति प्रेम हो, करुणा वहे सजीव ॥
2. दुर्जन में माध्यस्थ हो, भव से भय हि अतीव ।
जिनवर ऐसी भावना, भायें हम सब जीव ॥
3. अनन्त-बल निज में कहा, प्रगट ध्यान से होय।
सुख-दुख में समता धरें, उत्तम-सौख्य सुजोय॥
4. जिनवर-पद मम हृदय में, बसें नित्य शुभध्यान ।
जीव बचा चर्या रहे, बचें सभी के प्राण ॥
5. शिव-मग के अनुकूल सब, चलें सभी हम लोग ।
स्वेच्छाचारी-पन तजें, ना हों दुर्गति, रोग ॥
6. जिनवाणी की हो विनय, करें भक्ति सम्मान ।
शुद्ध-पाठ से शांत यह, मन बनता धीमान ॥
7. रत्नत्रय का लाभ हो, आत्म-लीन परिणाम ।
चिन्तामणि-सम सौख्य दे, आगम तुम्हें प्रणाम ॥
8. पाप रहित परमात्मा, व्यसन काम से दूर ।
राग, द्वेष सब तज दिये, करें भक्ति भरपूर ॥
9. वीतराग-जिन शरण में, सर्व कर्म कट जायँ ।
मोक्ष-सुपद का लाभ हो, समता-दल खिल जायँ ॥
10. बहिर्-द्रव्य आसन तथा, पूजा वा सम्मान ।
आत्मलीनता में कभी, उपयोगी ना जान ॥
11. शरीर, भोग, परिजन सभी, मेरे ना, मम रूप ।
मैं न उनका कदापि हूँ, स्वस्थ रहा निजरूप ॥
12. ज्ञान शुद्ध दर्शन तथा, चरित रूप परिणाम ।
आत्म-समाधि में सदा, ध्यावें साधु महान ॥

13. एकाकी-निज आत्मा, शाश्वत निर्मल पूर्ण ।
पर-पदार्थ जड़ रूप हैं, नश्वर-भव सम्पूर्ण ॥
14. सामायिक में साम्य हो, संयम-भावन रूप ।
आर्त्त-रौद्र न ध्यान हों, ध्यावें शुद्ध-सुरूप ॥
15. संयोगज सब द्रव्य ये, वियोग-सहहि अनित्य ।
चिन्ता, पीड़ा दें सदा, ध्यावें निज-गुण नित्य ॥
16. सांसारिक-उलझन सदा, भव-विकल्प से पूर्ण ।
पर चिंता को छोड़ दें, निज-सुख है सम्पूर्ण ॥
17. स्वयं किये सब कर्म वे, सुख-दुख दें यह ज्ञान ।
पर दें सुख-दुख जो कहें, रहे मूढ़ अन्जान ॥
18. चिंतन हो अध्यात्म का, बैर, अरति ना होय ।
किंचित भी न फल कभी - अन्य दे बुद्धि खोय ॥
19. परमातम की भक्ति से, पाप-बंध कट जायँ ।
पुण्य-बंध से सुख मिले, सुगति भव्य वे पायँ ॥
20. तप करते जब साधु वे, कर्म सभी गल जायँ ।
उत्तम-फल वह मोक्ष-सुख-मिले सुगुण जग भायँ ॥
21. सम-दर्शन व ज्ञान व्रत, मोक्ष-निमित्त महान ।
उपादान-निज आत्मा, मग पुरुषार्थ प्रधान ॥
22. शिवमग की ये भावना, पढ़ें पद्य इक्कीस ।
'साम्य भावना' से लहें, अर्हद्-पद इक ईश ॥

प्रशस्ति

23. ऊर्जयन्त में शुभ मना, शान्तिनाथ-निर्वाण ।
पच्चिस सौ अढ़तीस है, वर्ष वीर निर्वाण ॥
24. शुभतिथि, गुरु आशीष से, 'साम्य-भावना' पूर्ण।
'आर्जव' बन शिव-पद गहूँ, सुख पाऊँ संपूर्ण ॥

卐

ध्यान-दृश्य

धर्म-शुक्ल ये, हैं शुभ-ध्यान।
इनको ध्याने में कल्याण ॥ 1॥

आज्ञा, अपाय, विपाक, संस्थान।
जानें इनको धर्म सु-ध्यान॥ 2॥

अशुभ व शुभ-मन है संसार।
शुद्ध-मनस् से भव-उद्धार॥ 3॥

भोग त्यागता, योगी कहाय।
योगी वह ध्यानी कहलाय ॥ 4॥

पर को पर व, रज-सम कहना।
मिले स्वतः पर, ना वह गहना॥ 5॥

भोग्य-विषय लड्डू-सम होता।
गुटक सको-न-बाहर होता॥ 6॥

नाशाग्र हि दृष्टि, योगी रखता।
ध्यान-लीन हो, निजसुख चखता॥ 7॥

बंद पंख खग, नीड में में जाय।
योग-वशी योगि, ध्यानि कहाय ॥8॥

अनुप्रेक्षा-चिन्तन

जो कुछ दिखता, शाश्वत न है।
प्रतिक्षण होता नाश, यहाँ है ॥ 9॥

मरते समय न कोई बचाता।
अशरण यह संसार कहाता॥ 10॥

चतुर्गति में जीव भ्रमे यह।
स्वयं कर्म का फल भोगे वह॥ 11॥

आप अकेला, कर्म है करता।
जैसी करनी, स्वयं ही भरता ॥ 12॥

देह जुदी है आत्म जुदा है।
नीर दूध-सम, मोह मुदा है ॥ 13॥

पुदगल- मय यह तन न भाये।
पदार्थ घिनोने सदा बहाये॥ 14॥

मिथ्यात्व आदिक, आस्रव कारण।
योग कषाय तज, होय निवारण ॥ 15॥

गुप्ति समिति आदिक जब पाले।
संवर-मय जीवन को ढाले ॥ 16 ॥

स्वकाल पहले कर्म निकाले।
अविपाक निर्जरा का अवसर ले ॥ 17 ॥

तीन लोक यह, अनादि से है।
न बन मिटता, कर्त्तादि से है ॥ 18 ॥

मोक्षमार्ग में, श्रद्धा जब जागे।
बोधि मिले तब, सब भ्रम भागे ॥ 19 ॥

धर्म अहिंसा, रत्नत्रय मय।
पूज्य बनाता, होती जय-जय ॥ 20 ॥

ओम् है पञ्च प्रभु का रूप।
ध्यावें; बनते प्रभु-अनुरूप ॥ 21 ॥

पवन उदर भर, पूरक होता।
रुके उदर में, कुम्भक होता ॥ 22 ॥

धीमी वायु से, उदर रिक्त हो।
रेचक जानो, योगी स्वस्थ हो ॥ 23 ॥

ओम् का नित्य, ध्यान शुभ करना।
पंच-प्रभो का, पद भी गहना ॥ 24 ॥

ह्रीं, अक्षर चौबीसी रूप।
ध्याता पाता आप्त स्वरूप ॥ 25 ॥

ह्रीं ध्यान को जो है करता।
चौबीसी प्रभु गुण है वरता ॥ 26 ॥

श्रीकार शिव-लक्ष्मी कहाता।
ध्यानी यति शिवपद को पाता ॥ 27 ॥

पृथ्वी, अग्नि, वायु, धारणा।
जल, तत्त्व की करें विचारणा ॥ 28 ॥

ध्यान में मन शुभ-रंजित होना।
पाप-विषयों में, कदा न खोना ॥ 29 ॥

सम्यक् ध्यान में अगर उतरना।
'सम्यक् ध्यान शतक' नित पढ़ना ॥ 30 ॥

साभार : सदाचार सूक्ति काव्य

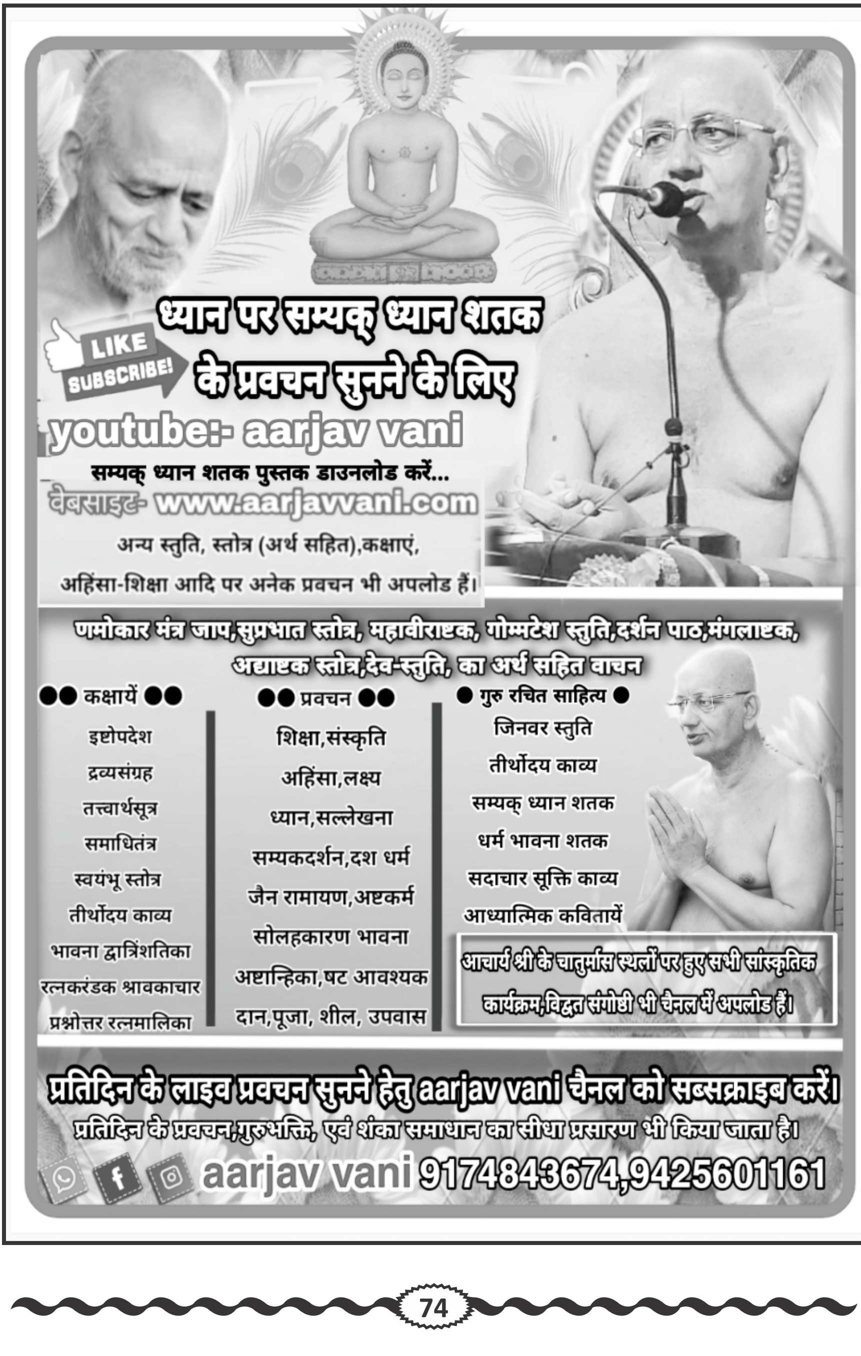

LIKE
SUBSCRIBE!
ध्यान पर सम्यक् ध्यान शतक
के प्रवचन सुनने के लिए
youtube:- aarjav vani
सम्यक् ध्यान शतक पुस्तक डाउनलोड करें...
वेबसाइट- www.aarjavvani.com
अन्य स्तुति, स्तोत्र (अर्थ सहित),कक्षाएं,
अहिंसा-शिक्षा आदि पर अनेक प्रवचन भी अपलोड हैं।
णमोकार मंत्र जाप,सुप्रभात स्तोत्र, महावीराष्टक, गोम्मटेश स्तुति,दर्शन पाठ,मंगलाष्टक,
अद्याष्टक स्तोत्र,देव-स्तुति, का अर्थ सहित वाचन
●● कक्षायें ●●
इष्टोपदेश
द्रव्यसंग्रह
तत्त्वार्थसूत्र
समाधितंत्र
स्वयंभू स्तोत्र
तीर्थोदय काव्य
भावना द्वात्रिंशतिका
रत्नकरंडक श्रावकाचार
प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
●● प्रवचन ●●
शिक्षा,संस्कृति
अहिंसा,लक्ष्य
ध्यान,सल्लेखना
सम्यकदर्शन,दश धर्म
जैन रामायण,अष्टकर्म
सोलहकारण भावना
अष्टान्हिका,षट आवश्यक
दान,पूजा, शील, उपवास
● गुरु रचित साहित्य ●
जिनवर स्तुति
तीर्थोदय काव्य
सम्यक् ध्यान शतक
धर्म भावना शतक
सदाचार सूक्ति काव्य
आध्यात्मिक कवितायें
आचार्य श्री के चातुर्मास स्थलों पर हुए सभी सांस्कृतिक
कार्यक्रम,विद्वत संगोष्ठी भी चैनल में अपलोड हैं।
प्रतिदिन के लाइव प्रवचन सुनने हेतु aarjav vani चैनल को सब्सक्राइब करें।
प्रतिदिन के प्रवचन,गुरुभक्ति, एवं शंका समाधान का सीधा प्रसारण भी किया जाता है।
aarjav vani 9174843674,9425601161